भारतेंदु-साहित्य

संपादक
पं० रामचंद्र शुक्ल
(प्रोफेसर—हिंदूविश्वविद्यालय)
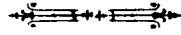
प्रकाशक
हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

प्रकाशक

वैदेहीशरण

अध्यक्ष—हिन्दी-पुस्तक-भंडार

लहेरियासराय (बिहार)

प्रथम संस्करण, संवत् १९८५ वि०

मुद्रक

बजरंगबली गुप्त 'विशारद'

श्रीसीताराम प्रेस, बिसेसरगंज, बनारस

विषय-सू

भारतेंदु हरिश्चंद्र

परिचय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी क्लाइव के चरित्र पर धब्बा डालनेवाले इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचंद के घराने में थे। अमीचंद के दोनों पुत्र राय रतनचंद और साहु फतहचंद काशी में आ बसे। साहु फतहचंद के पौत्र बाबू हरषचंद, जो काले हरषचंद के नाम से प्रसिद्ध थे, काशी के एक सम्पत्तिशाली रईस थे। उनके पुत्र बा० गोपालचंद (उपनाम गिरधरदास) हिन्दी के एक बहुत ही प्रौढ़ कवि थे। इन्हीं के पुत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी हुए जिनका जन्म ता० ९ सितंबर सन् १८५० ई० में हुआ।

आरम्भ ही से इनका स्वभाव चपल और बुद्धि तीव्र थी। कहते हैं कि सात ही वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक दोहा बनाया था जिसपर इनके पिता ने इनके होनहार होने की आशा प्रकट की थी। ९ वर्ष की अवस्था में इनके पिताजी का देहावसान हो गया जिससे इनकी प्रकृति में और भी स्वतंत्रता आ गई। कुछ दिनों तक ये राजा शिवप्रसाद से अंगरेजी पढ़ते रहे, पीछे बनारस के क्वींस कालेज में पढ़ने जाने लगे। पढ़ने में ये बहुत अच्छे थे, पर तीन-चार वर्ष पीछे जब अपनी माताजी के साथ जगन्नाथजी की यात्रा से लौटकर आए तब पढ़ने का सिलसिला टूट गया। इसी जगन्नाथजी की यात्रा में वंग-साहित्य की नई गति से

इनका परिचय हुआ और हिन्दी-साहित्य को भी नए मार्ग पर लाने का उत्साह इनके मन में उत्पन्न हुआ। साथ ही देश-प्रेम और देशहित का भाव भी जगा।

जगन्नाथजी से लौटने पर पहले ये शिक्षा-प्रचार के आयोजन में लगे और अपने घर पर ही एक स्कूल खोला जिसमें आसपास के लड़के पढ़ने आने लगे। कुछ दिनों में बढ़ते-बढ़ते यह 'चौखंभा स्कूल' हुआ और आज "हरिश्चन्द्र स्कूल" के नाम से काशी के अच्छे हाई-स्कूलों में गिना जाता है। शिक्षा-प्रचार के उद्योग के साथ ये साहित्य-निर्माण में भी लग गए। सन् १८६८ में इन्होंने बँगला से अनुवाद करके "विद्यासुन्दर नाटक" प्रकाशित किया और "कविवचन-सुधा" नाम की पत्रिका निकाली। सन् १८७३ ई० में "हरिश्चन्द्र मेगर्ज़ीन" बड़ी धूम से निकली, जिसका नाम आठ महीने पीछे "हरिश्चन्द्र-चंद्रिका" हो गया। इसी 'चंद्रिका' से हिन्दी के नए युग का प्रवर्त्तन हुआ और कई एक प्रतिभाशाली लेखक साहित्य के इस नए उत्थान में योग देने के लिए खड़े हुए। इसी वर्ष इन्होंने "पेनी रीडिंग क्लब" नाम का समाज स्थापित किया जिसमें हिन्दी के अच्छे अच्छे लेख और कविताएँ पढ़ी जाती थीं। "कर्पूरमंजरी" और "चंद्रावली नाटिका" की रचना तथा "तदीय समाज" की स्थापना भी इसी समय के लगभग हुई। इस समाज में धर्म और भगवत्प्रेम-संबंधी वार्ता हुआ करती थी।

ये जैसे प्रतिभाशाली कवि और लेखक थे वैसे ही उदार और गुणग्राहक थे। ये जब तक रहे, कवियों और लेखकों को हर तरह से—प्रेमपूर्वक, अनुनय-विनय से, साधुवाद से, अर्थ-साहाय्य से—उत्साहित करते रहे।

इनका सारा समय साहित्य-चर्चा में ही बीतता था। इनके यहाँ कवियों और लेखकों का दरबार-सा लगा रहता था। कोई गुणी, जो अर्थी होकर इनके पास आया, विमुख नहीं फिरा, आशा से कहीं अधिक सफलकाम होकर लौटा। हिन्दी के हित के लिए तो इन्होंने रुपया पानी की तरह बहाया। अपनी दशा क्या होगी, इसका तो इन्होंने कभी ख्याल ही नहीं किया। शारीरिक श्रम का अनुमान इसी से हो सकता है कि ३५ वर्ष की आयु पाकर ही इन्होंने इतनी पुस्तकें लिख डालीं। हिंदी की ओर प्रेम उत्पन्न करने के लिए ये जगह-जगह अपने इस सिद्धांन्त की घोषणा करते हुए--

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल॥

व्याख्यान भी दिया करते थे। सारांश यह कि हिंदी पर इन्होंने तन, मन, धन, सब कुछ निछावर किया।

हिंदी-साहित्य की नवीन गति के प्रवर्त्तक भारतेंदुजी ही माने जाते हैं। नए ढंग के रूपकों के अतिरिक्त इन्होंने गद्य-निबंध; इतिहास (जैसे, काश्मीर-कुसुम; बादशाहदर्पण) आदि भी लिखे। वंगभाषा के नई चाल के उपन्यासों को देख अपने जीवन के पिछले काल में उपन्यास लिखने की ओर भी इनकी प्रवृत्ति हो रही थी, पर अचानक अमर-लोक का निमंत्रण आ पहुँचा और ३५ वर्ष की अवस्था में ही ६ जनवरी १८८५ को ये इस संसार को छोड़कर चले गए। चले तो गए, पर जब तक हिंदी-भाषा और उसका साहित्य रहेगा। तब तक इनकी मधुर स्मृति बनी रहेगी।

साहित्यिक प्रभाव

हिंदी-गद्य-साहित्य का सूत्रपात करनेवाले चार महानुभाव कहे जाते हैं — मुंशी सदासुख लाल, इंशा अल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र। ये चारो संवत् १८६० के आसपास वर्त्तमान थे। सच पूछिए तो ये गद्य के नमूने दिखानेवाले ही रहे; अपनी परंपरा प्रतिष्ठित करने का गौरव इनमें से किसी को भी प्राप्त न हुआ। हिंदी गद्य-साहित्य की अखंड परंपरा का प्रवर्त्तन इन चारो लेखकों के ७०—७२ वर्ष पीछे हुआ। विक्रम की बीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण समाप्त हो जाने पर जब भारतेंदु ने हिंदी-गद्य की भाषा को सुव्यवस्थित और परिमार्जित करके उसका स्वरूप स्थिर कर दिया तब से गद्य-साहित्य की परंपरा लगातार चली। इस दृष्टि से भारतेंदुजी जिस प्रकार वर्त्तमान गद्य-भाषा के स्वरूप-प्रतिष्ठापक थे, उसी प्रकार वर्त्तमान-साहित्य-परंपरा के प्रवर्त्तक।

भारतेंदुजी ने जिस प्रकार की हिंदी चलाई उसके रूप का कुछ पूर्व आभास मुंशी सदासुख और पं० सदल मिश्र की भाषा में ही मिलता है। दोनों की भाषा के नमूने देखिए—

मुंशी सदासुख

"यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इसका डर नहीं। जो बात सत्य है उसे कहा चाहिए, कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य्य उसका सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते

हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइए और फुसलाइए और सत्य छिपाइए।"

सदल मिश्र

"कब मैं सुंदर बालक सहित चंद्रावती का मुहँ, कि जो बन के रहने से भोर के चंद्रमा सा मलीन हुआ होगा, देखोगी। देखो, यह कर्म का खेल! कहाँ इहाँ नाना भाँति भोग विलास में वो फूलन्ह के बिछौने पर सुख से जिसके दिनरात बीतते थे, सो अब जंगल में कन्द-मूल खा काँटे कुश पर सो कर स्यारों के चहुँदिशि डरावने शब्द सुनि कैसे विपति को काटती होगी?"

पर इस आभास को पाकर भी उस समय साहित्य-सेवी गद्य-लेखकों की परंपरा नहीं तैयार हुई। इसका उस समय यदि किसी ने लाभ उठाया तो ईसाई मत-प्रचारकों ने। संवत् १८६६ में सिरामपुर से बाइबिल के कुछ अंश का हिंदी-अनुवाद प्रकाशित हुआ और संवत् १८७५ तक यह अनुवाद पूरा हो गया। तब से बराबर मिशनरियों की ओर से मतप्रचार की पुस्तकों के अतिरिक्त शिक्षासंबंधिनी पुस्तकें कुछ न कुछ बराबर प्रकाशित होती रहीं। ये पुस्तकें, भूगोल, इतिहास, रसायन, जंतु विवरण आदि भिन्न-भिन्न विषयों पर होती थीं। आगरे की "एजुकेशनल सोसाइटी" और 'मिर्ज़ापुर' के 'आरफ़ेन प्रेस' से इस प्रकार की बहुत-सी पुस्तकें निकलीं। उनकी भाषा विशुद्ध रहती थी। उनमें फ़ारसी-अरबी के शब्द नहीं आने पाते थे। पर इन पुस्तकों की गिनती साहित्य में नहीं हो सकती।

इसके उपरांत राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद का समय आता है। उस समय अदालती भाषा उर्दू नियत हो चुकी थी और नवशिक्षित लोगों की वही भाषा हो रही थी। इससे जब देशभाषा की पढ़ाई की व्यवस्था हुई और गावों आर क़सबों में मदरसे खुलने लगे तब भाषा का प्रश्न बड़े विकट रूप में सामने आया। मुसलमान लोग "भाखा" (संस्कृत-मिली हिंदी) से बहुत डरने या चिढ़ने लगे थे। इससे वे हिंदी की पढ़ाई का विरोध करने में बराबर तत्पर रहते थे। अँगरेज़ अफ़सर भी दो प्रकार की गद्य-भाषा प्रचलित होना ठीक नहीं समझते थे। इसी परिस्थिति में अर्थात् संवत् १९१३ में राजा शिवप्रसाद स्कूलों के इंस्पेक्टर हुए। वे हिंदी को उर्दू से स्वतंत्र रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे, पर उनके मार्ग में बड़े-बड़े विघ्न थे। अंत में उन्होंने ठेठ हिन्दी का आश्रय लिया जिसमें अरबी-फ़ारसी के प्रचलित शब्द भी रहते थे। उन्होंने "राजा भोज का सपना", "वीरसिंह का वृत्तांत" आदि कई छोटी पुस्तकें इस प्रकार की भाषा में आप तो लिखी ही, पं० श्रीलाल, पं० वंशीधर आदि अपने अनेक मित्रों से भी लिखाईं। पर पीछे शिक्षा-विभाग के अधिकारियों की प्रवृत्ति उर्दू की ही ओर अधिक देख "इतिहास-तिमिर-नाशक" आदि में राजा साहब ने "बैतालपचीसी" की भाषा का अनुकरण किया, जो बिल्कुल उर्दू है। अपने इस बदले हुए सिद्धांत का निरूपण उन्होंने "भाषा का इतिहास" नामक एक लेख में किया जिसमें लिखा कि "हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिये जो आमफ़हम और ख़ास-पसंद हों"।

राजा शिवप्रसाद के उर्दू की ओर एकबारगी झुक पड़ने के पहले ही राजा लक्ष्मणसिंह अपने "शकुन्तला नाटक" द्वारा संवत् १९१९ में थोड़ी संस्कृत-मिली ठेठ और विशुद्ध हिंदी सामने रख चुके थे जिसमें अरबी-फ़ारसी के शब्द नहीं थे। उसका कुछ अंश राजा शिवप्रसाद ने अपने "गुटका" में सम्मिलित किया था। पीछे जब वे उर्दू की ओर झुके तब राजा लक्ष्मणसिंह ने अपने 'रघुवंश' के अनुवाद के प्राक्कथन में भाषा के संबंध में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया—

"हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं। हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानों और पारसी पढ़े हुये हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं; उर्दू में अरबी पारसी के। परन्तु कुछ अवश्य नहीं है कि अरबी पारसी के शब्दों के बिना हिंदी न बोली जाय और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं जिसमें अरबी पारसी के शब्द भरे हों"।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि जिस समय राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद मैदान में आये थे उस समय खींच-तान बनी थी; भाषा के स्वरूप को स्थिरता नहीं प्राप्त हुई थी। वह भाषा का प्रस्ताव-काल था। प्रवर्त्तन-काल का आरम्भ भारतेंदु की कुछ रचनाओं के निकल जाने के उपरांत संवत् १९३० के लगभग हुआ। यद्यपि इसके पहले 'विद्यासुंदर' (संवत् १९२५) तथा और कई नाटक भारतेंदुजी लिख चुके थे, पर वर्त्तमान हिंदी-गद्य के उदय का समय उन्होंने "हरिश्चंद्र-मैगज़ीन" के निकलने पर, अर्थात् संवत् १९३० से, माना है।

भारतेंदु की भाषा में ऐसी क्या विशेषता पाई गई कि उसका इतना चलन उन्हीं के सामने हो गया, इसका थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। संवत् १८६० में खड़ी बोली के गद्य का सूत्रपात करनेवालों में मुंशी सदासुख और सदल मिश्र ने ही व्यवहार-योग्य चलती भाषा का नमूना तैयार किया था। पर इन दोनों की रचनाओं में सफाई नहीं थी। बहुत-कुछ कूड़ा-करकट भरा था। मुंशी सदासुख भगवद्भक्त पुरुष थे और पंडितों और साधुसंतों के सत्संग में रहा करते थे। इससे उनके 'सुखसागर'' की भाषा में बहुत-कुछ पंडिताऊपन है। उनकी खड़ी बोली उस ढंग की है जिस ढंग की संस्कृत के विद्वान् पंडित काशी, प्रयाग आदि पूरब के नगरों में बोलते थे और अब भी बोलते हैं। यद्यपि मुंशीजी खास दिल्ली के रहनेवाले थे और उर्दू के अच्छे कवि और लेखक थे; पर हिंदी-गद्य के लिए उन्होंने पंडितों की बोली ही ग्रहण की। "स्वभाव करके वे दैत्य कहलाए," "उसे दुख होयगा,' ' बहकावनेवाले बहुत हैं" इस प्रकार के प्रयोग उन्होंने बहुत किए हैं। रहे सदल मिश्र; उनकी भाषा में पूरबीपन बहुत अधिक है। 'जो' के स्थान पर "जौन", 'माँ' के स्थान पर "मतारी," यहाँ के स्थान पर 'इहाँ', 'देखूँगी' के स्थान पर "देखौंगी" ऐसे शब्द बराबर मिलते हैं। इसके अतिरिक्त व्रजभाषा या काव्य-भाषा के ऐसे-ऐसे प्रयोग जैसे "फूलन्ह के" "चहुँदिशि" "सुनि" भी लगे रह गये हैं।

पहले कहा जा चुका है कि लल्लूलाल और राजा शिवप्रसाद के बीच जो ५० वर्ष का अन्तर पड़ता है उसमें ईसाइयों के प्रबन्ध से शिक्षा-संबंधिनी विविध विषयों की पुस्तकें निकलती रहीं। इनकी भाषा अरबी-

फारसी के शब्दों से रहित तो अवश्य रहती थी, पर वाक्य-रचना ऊट-पटाँग और शब्द-विन्यास विलक्षण होता था। इतना इन पुस्तकों से अवश्य हुआ कि खड़ी बोली गद्य का स्वतंत्र हिंदी रूप लोगों के सामने से हटने नहीं पाया। यही कारण है कि राजा शिवप्रसाद और लक्ष्मण-सिंह के मैदान में आने के पहले ही साफ-सुथरी हिंदी लिखनेवाले कुछ लेखक तैयार हो गए थे। सन् १८५२ (संवत् १९०८+१९०९) से "बुद्धिप्रकाश" नाम का एक पत्र आगरे से छपकर प्रकाशित होने लगा था जिसमें समाचारों के अतिरिक्त स्त्री शिक्षा आदि विषयों पर कुछ निबंध भी रहते थे। इस पत्र की भाषा विशुद्ध होने पर भी सदासुख और सदल मिश्र की भाषा से बहुत परिमार्जित है। नमूना देखिए—

स्त्रियों की शिक्षा के विषय

"स्त्रियों में संतोष नम्रता और प्रीत यह सब गुण कर्ता ने उत्पन्न किए हैं केवल विद्या ही की न्यूनता है जो यह भी हो तो स्त्रियाँ अपने सारे ऋण से चुक सकती हैं और लड़कों को सिखाना पढ़ाना जैसा उनसे बन सकता है पुरुषों से नहीं हो सकता यह काम उन्हीं का है कि शिक्षा के कारण बाल्यावस्था में लड़कों को भूल चूक से बचावें और सरल सरल विद्या उन्हें सिखावें"।

उद्धृत अंश में विराम चिन्हों का जैसा अभाव है वैसा ही सारे लेख में है। एक में न जुड़ सकनेवाले वाक्य भी बराबर 'और' लगाकर यहाँ से वहाँ तक जुड़ते चले गए हैं। राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह की लिखावट में भी यह दोष कुछ न कुछ बना रहा।

राजा शिवप्रसाद के गद्य में अधिक खटकनेवाली बात थी उर्दूपन, जो दिन-दिन बढ़ता गया। इसी प्रकार राजा लक्ष्मणसिंह के गद्य में खटकनेवाली बात थी आगरे की बोलचाल का पुट। दूसरी बात यह थी कि विशुद्धता का जो आदर्श लेकर राजा लक्ष्मणसिंह चले थे वह एक चलती व्यावहारिक भाषा के उपयुक्त न था। जो फारसी-अरबी के शब्द लोगों की जबान पर नाचा करते थे उन्हें एकदम छोड़ देना भाषा की संचित शक्ति को घटाना था। हँसी-मज़ाक के लिए कुछ अरबी-फारसी के चलते शब्द कभी-कभी कितना अच्छा काम देते हैं, यह हम लोग बराबर देखते हैं।

ऊपर लिखी त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए जब हम भारतेंदु की भाषा पर विचार करने बैठते हैं तब इस बात का समझना कुछ सुगम हो जाता है कि उन्होंने हिंदी-गद्य का क्या संस्कार किया। उनकी भाषा में न तो लल्लूलाल का व्रजभाषापन आने पाया, न मुंशी सदासुख का पंडिताऊपन, न सदल मिश्र का पूरबीपन, न राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन, और न राजा लक्ष्मणसिंह का खालिसपन और आगरापन। इतने 'पनों' से एक साथ पीछा छुड़ाना भाषा के संबंध में बहुत ही परिष्कृत रुचि का परिचय देता है। संस्कृत-शब्दों के आने पर भी भाषा का सुबोध बना रहना, फ़ारसी-अरबी के शब्द आने पर भी साथ-साथ उर्दूपन न आना, हिंदी की स्वतंत्र सत्ता का प्रमाण था। उनका भाषा-संस्कार शब्दों की काट-छाँट तक ही नहीं रहा। वाक्य-विन्यास में भी वे सफ़ाई लाए। उनकी लिखावट में एक साथ न जुड़ सकनेवाले वाक्य एक में गुँथे हुए प्रायः नहीं पाए जाते। तात्पर्य के

उपयुक्त संयोजक अव्ययों का व्यवहार जैसा इन्होंने चलाया वैसा इनके पहले न था। विराम की परख भी इन्हें राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद से अच्छी थी।

यह तो हुई भाषा की रूप-प्रतिष्ठा की बात। इससे भी बढ़कर काम उन्होंने हिंदी-साहित्य को एक नए मार्ग पर खड़ा करके किया। वे साहित्य के नए युग के प्रवर्त्तक हुए। यद्यपि देश में नए-नए विचारों और भावनाओं का संचार हो गया था, पर हिंदी उनसे दूर थी। लोगों की अभिरुचि बदल चली थी, पर हमारे साहित्य पर उसका कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता था। शिक्षित लोगों के विचारों और व्यापारों ने तो दूसरा मार्ग पकड़ लिया था, पर उनका साहित्य उसी पुराने मार्ग पर था। ये लोग समय के साथ आप तो कुछ आगे बढ़ आए थे, पर जल्दी में अपने साहित्य को साथ न ले सके थे। उसका साथ छूट गया था और वह उनके विचारक्षेत्र और कार्य्यक्षेत्र दोनों से अलग पड़ गया था। प्रायः सभी सभ्य जातियों का साहित्य उनके विचारों और व्यापारों से लगा हुआ चलता है। यह नहीं कि उनकी चिंताओं और कार्य्यों का प्रवाह एक ओर जा रहा हो और उनके साहित्य का प्रवाह दूसरी ओर।*

फिर यह विचित्र घटना यहाँ कैसे हुई? बात यह थी कि जिन लोगों के मन में नई शिक्षा के प्रभाव से नए विचार उत्पन्न हो रहे थे, जो

---

* इन सब बातों का पूरा विवेचन मैं 'हरिश्चन्द्र-समीक्षा' नामक एक लेख में कर चुका हूँ जो आज से १४-१५ वर्ष पहले 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' भाग १४-१५ संख्या १० में छपा है।

अपनी आँखों काल की रीति देख रहे थे और देश की आवश्यकताओं को समझ रहे थे, उनमें अधिकांश तो ऐसे थे जिनका कई कारणों से—विशेषतः उर्दू के बीच में पड़ जाने से—हिंदी-साहित्य से लगाव छूट-सा गया था और शेष—जिनमें नवीन भावों की कुछ प्रेरणा और विचारों की कुछ स्फूर्ति थी—ऐसे थे जिन्हें हिंदी-साहित्य का क्षेत्र इतना परिमित दिखाई देता था कि नए-नए विचारों को सन्निविष्ट करने के लिए स्थान ही नहीं सूझता था। उस समय एक ऐसे सामंजस्य-पटु, साहसी और प्रतिभा-संपन्न पुरुष की आवश्यकता थी जो कौशल से इन बढ़ते हुए विचारों का मेल देश के परंपरागत साहित्य से करा देता। ऐसे ही पुरुष के रूप में बाबू हरिश्चंद्र साहित्यक्षेत्र में उतरे। उन्होंने हमारे जीवन के साथ हमारे साहित्य को फिर से लगा दिया। बड़े भारी विच्छेद से उन्होंने हमें बचाया।

वे सिद्ध-वाणी के अत्यंत सरस-हृदय कवि थे। इससे एक ओर तो उनकी लेखनी से शृंगाररस के ऐसे रसपूर्ण और मर्मस्पर्शी कवित्त-सवैये निकलते थे कि उनके जीवनकाल में ही इधर उधर लोगों के मुह से सुनाई पड़ने लगे थे और दूसरी ओर स्वदेश-प्रेम से भरे हुए उनके लेख और कविताएँ चारों ओर देश के मंगल का मंत्र-सा फूँकती थीं। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंगदेश के मधुसूदन-दत्त और हेमचंद्र की श्रेणी में; एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई 'भक्तमाल' गूँथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर टीकाधारी बगला-भगतों की हँसी उड़ाते तथा स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार आदि

पर व्याख्यान देते पाए जाते थे । प्राचीन और नवीन का यहाँ सुन्दर सामंजस्य भारतेंदु की कला का विशेष माधुर्य है । साहित्य के एक नवीन युग के आदि मे प्रवर्त्तक के रूप में खड़े होकर उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि नए-नए या बाहरी भावों को पचाकर इस ढंग से मिलाना चाहिए कि वे अपने ही साहित्य के विकसित अंग से लगें । प्राचीन और नवीन के उस संधिकाल मे जैसी शीतल और मृदुल कला का संचार अपेक्षित था वैसी ही शीतल और मृदुल कला के साथ भारतेंदु का उदय हुआ, इसमे संदेह नहीं ।

भारतेंदु ने जिस समय क़लम उठाई उस समय हिंदी-साहित्य में भक्ति, शृंगार आदि की पुराने ढंग की कविताएँ ही होती चली आ रही थी । गद्य का मैदान एक तरह से खाली ही था । बीच-बीच मे साधारण शिक्षासंबंधिनी कुछ पुस्तकें अवश्य निकल जाती थी, पर देशकाल के अनुकूल साहित्य-निर्माण का कोई विस्तृत प्रयत्न तब तक नहीं हुआ था । बंगदेश मे ऐसे नए ढंग के नाटकों और उपन्यासों का सूत्रपात हो चुका था जिनमे देश और समाज की नई रुचि और भावना का प्रतिबिंब आने लगा था । पर हिंदीसाहित्य अपने पुराने रास्ते पर ही पड़ा था । बंगदेश की इस नवीन साहित्यिक प्रगति से परिचित होते ही वे नूतन पद्धति पर साहित्य निर्माण मे लग गए । संवत् १९२५ में उन्होने 'विद्यासुंदर' नाटक का बँगला मे अनुवाद किया । इस अनुवाद मे ही उन्होंने हिंदी-गद्य के बहुत ही सुडौल रूप का आभास दिया । इसी वर्ष उन्होंने "कविवचनसुधा" नाम की एक पत्रिका निकाली जिसमें पहले पुराने कवियों की कविताएँ छपा

करती थीं, पर पीछे गद्य-लेख भी रहने लगे । संवत् १९३० में उन्होंने "हरिश्चंद्र-मैगज़ीन" नाम की मासिक-पत्रिका निकाली जिसका नाम आठ संख्याओं के उपरान्त "हरिश्चंद्र-चंद्रिका" हो गया । हिंदी-गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले- पहल इसी चंद्रिका में प्रकट हुआ । जिस प्यारी हिंदी को देश ने अपनी वाणी की विभूति समझा उसका दर्शन इस पत्रिका में हुआ । स्वयं भारतेंदु ने नई सुधरी हुई हिंदी का उदय इसी समय से माना है । उन्होंने "कालचक्र" नाम की अपनी पुस्तक में नोट किया है कि "हिंदी नई चाल में ढली सन् १८७३ ई०" ।

अपनी "चंद्रिका" द्वारा भारतेंदु ने छोटे-छोटे गद्य-निबंधों का आयोजन किया । वे अपने ही निबंधों से उस पत्रिका को भरना नहीं चाहते थे । रुचिवैचित्र्य के अनुसार वे अनेक प्रकार की शैलियों का विकास देखा चाहते थे । उसमें प्रकाशित उनका लिखा "पाँचवें पैगंबर", मुंशी ज्वाला प्रसाद का "कलिराज की सभा," बाबू तोताराम का "अद्भुत अपूर्व स्वप्न" मुंशी कमलाप्रसाद का "रेल का विकट खेल" आदि लेख बहुत दिनों तक लोग बड़े चाव से पढ़ते थे । उपाध्याय पं० बदरीनारायण चौधरी जब अपनी "आनंदकादंबिनी" में अपने ही लेख दे चले तब भारतेंदुजी ने एक दिन उनसे कहा कि "जनाब ! यह किताब नहीं है जो आप अकेले ही इरक़ाम फ़रमाया करते हैं, यह अखबार है, इसमें हर तरह के लेखकों के लेख चाहिए, यह भी अवश्य नहीं कि सब बड़े भारी लिक्खाड़ हों" । कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतेंदु की चलाई हुई इस साहित्यिक 'निबंध'-परंपरा का पालन पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय पं० बदरी-

नारायण चौधरी आदि उनके कई सहयोगी कुछ दिनों तक करते रहे। परंतु खेद है कि वह परंपरा खंडित हो गई और हिंदी-साहित्य में उच्च तात्पर्य्यपूर्ण निबंधों का अभाव अभी तक बना ही है।

भारतेंदुजी की गद्यरचना के भीतर प्रधान स्थान नाटकों का दिखाई पड़ता है। गद्य की शैली आदि का विवेचन करनेवाले पाश्चात्य ग्रंथों में विचार के लिए नाटकों की उक्तियाँ नहीं ली जातीं; प्रायः निबंध ही लिए जाते हैं। इसके दो कारण ध्यान में आते हैं। एक तो यह कि निबंध में लेखक के अपने भाव और विचार होते हैं या आज कल की नई बोली में उसके "व्यक्तित्व की छाप लगी होती है"। दूसरा यह कि संश्लिष्ट विचारधारा व्यक्त करने की शक्ति की परीक्षा निबंधों में ही हो सकती है। पर कला की दृष्टि से विचारात्मक गद्य के अतिरिक्त भावात्मक गद्य का भी बहुत-कुछ मूल्य है और जिस प्रकार अपने व्यक्तिगत भावों और विचारों के अभिव्यक्त करने में किसी लेखक की क्षमता का विचार हो सकता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकृतिवाले प्राणियों के भावों और विचारों को शब्दों में ठीक-ठीक उतारने में भी। नाटकीय गद्य भी लेखकों की बड़ी भारी कसौटी है। उसकी सफलता भाषा पर विस्तृत अधिकार सूचित करती है। इसके अतिरिक्त नाटककार अपने व्यक्तिगत भावों और विचारों की व्यंजना भी तो कभी-कभी किसी पात्र के मुहँ से कराते ही हैं।

इस संग्रह में भारतेंदुजी के प्रायः सब नाटकों से एक-एक दृश्य तथा कुछ अन्य फुटकर लेख लेकर रखे गये हैं, जिसमें सब प्रकार के प्रसंगों के अनुरूप उनकी भाषा की गति-विधि भासित हो जाय।

नाटकीय गद्य में बहुत लंबे-लंबे और उलझे हुए वाक्य नहीं होने चाहिएँ। पात्रों के भाषण में वाक्य उतने ही बड़े होने चाहिएँ जितने सुनने के साथ ही समझे जा सकें। इस बात का ध्यान बाबू हरिश्चंद्र के सब नाटकों में रखा गया है। हाँ, कहीं-कहीं लंबी वक्तृताएँ अवश्य हैं जो नाट्यकला के आधुनिक झुकाव के अनुकूल नहीं। इस संग्रह में भी कुछ ऐसे लंबे भाषण मिलेंगे, क्योंकि यह संग्रह भाषा के सौष्ठव की दृष्टि से किया गया है, नाट्यकला की दृष्टि से नहीं। भारतेंदु की भाषा के संबंध में पहले विचार कर आये हैं। यहाँ पर इतना ही और कहने की ज़रूरत है कि भारतेंदु और उनके समसामयिक लेखकों का ध्यान व्याकरण के नियमों पर उतना स्थिर नहीं हुआ था, इससे 'दीवार बनाया,' 'आज्ञा किया,' 'भेंड़ बेचा,' ऐसे व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग कहीं-कहीं मिल जाते हैं जिन्हें चाहें तो 'पूरबीपन' भी कह सकते हैं। खड़ी बोली की दिल्लीवाली कसौटी पर कसते हैं तो भारतेंदु की भाषा में कहीं-कहीं 'पूरबीपन' की कुछ झाईं मिल जाती है— पर बहुत कम।

आशा है, इस संग्रह द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ भारतेंदु के भाषा-सौष्ठव का भी अच्छा परिचय होगा।

'गुरुधाम'
दुर्गाकुंड, काशी
पौष-पूर्णिमा १९८५

रामचंद्र शुक्ल

भारतेन्दु-साहित्य

[गद्य-भाग]

अंधेर-नगरी
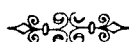
चौथा दृश्य

[राजसभा]

(राजा —मन्त्री —और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं)

१ सेवक ।—(चिल्ला कर) पान खाइए महाराज ।

राजा ।—(पीनक से चौंक के घबड़ा कर उठता है) क्या कहा ? सुपनखा आई ए महाराज । (भागता है)

मन्त्री ।—(राजा का हाथ पकड़ कर) नहीं नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज ।

राजा ।—दुष्ट लुच्चा पाजी ! नाहक़ हम को डरा दिया । मन्त्री इसको सौ कोड़े लगैं ।

मन्त्री।—महाराज! इसका क्या दोष है? न तमोली पान लगा कर देता, न यह पुकारता।

राजा।—अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री।—पर महाराज, आप पान खाइए सुन कर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो।

राजा।—(घबड़ा कर) फिर वही नाम? मन्त्री तुम बड़े खराब आदमी हो। हम रानी से कह देंगे कि मन्त्री बेर बेर तुम को मौत बुलाने चाहता है। नौकर! नौकर! शराब—

२ नौकर।—(एक सुराही में से एक गिलास में शराब उझल कर देता है) लीजिये महाराज। पीजिए महाराज।

राजा।—(मुंह बना बना कर पीता है) और दे।

(नेपथ्य में—दुहाई है दुहाई—का शब्द होता है)

कौन चिल्लाता है—पकड़ लाओ।

(दो नौकर एक फ़र्यादी को पकड़ लाते हैं)

फ़॰।—दोहाई है महाराज दोहाई है। हमारा न्याव होय।

राजा।—चुप रहो। तुम्हारा न्याव यहां ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा—बोलो क्या हुआ?

फ़॰।—महाराज! कल्लू बनियां की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई। दोहाई है महाराज न्याव हो।

राजा।—(नौकर से) कल्लू बनियां की दीवार को अभी पकड़ लाओ।

मन्त्री।—महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।

राजा ।—अच्छा, उसका भाई लड़का दोस्त आशना जो हो उस को पकड़ लाओ ।

मन्त्री ।—महाराज ! दीवार ईंट चूने की होती है, उसको भाई बेटा नहीं होता ।

राजा ।—अच्छा, कल्लू बनिये को पकड़ लाओ ।

(नौकर लोग दौड़ कर बाहर से बनिए को पकड़ लाते हैं) क्यों बे बनिए ! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दब कर मर गई ?

मन्त्री ।—बरकी नहीं महाराज बकरी ।

राजा ।—हां हां, बकरी क्यों मर गई—बोल, नहीं अभी फांसी देता हूं ।

कल्लू ।—महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं । कारीगर ने ऐसी दीवार बनाया कि गिर पड़ी ।

राजा ।—अच्छा, इस मल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ । (कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़ कर लाते हैं) क्यों बे कारीगर ! इसकी बकरी किस तरह मर गई ?

कारीगर ।—महाराज, मेरा कुछ कसूर नहीं, चूनेवाले ने ऐसा बोदा बनाया कि दीवार गिर पड़ी ।

राजा ।—अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ, नहीं नहीं निकालो, उस चूनेवाले को बुलाओ ।

(कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़ कर लाया जाता है) क्यों बे खैर सुपाड़ी चूनेवाले ! इसकी कुबरी कैसे मर गई ?

चूनेवाला।—महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं; भिश्ती ने चूने में पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा।

राजा।—अच्छा, चुन्नीलाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो। (चूनेवाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है) क्यों बे भिश्ती ! गंगा जमुना की किश्ती ! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई ?

भिश्ती।—महाराज ! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दिया कि उसमें पानी जादे आ गया।

राजा।—अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती निकालो। (लोग भिश्ती को निकालते हैं और कस्साई को लाते हैं) क्यों बे कस्साई, मशक ऐसी क्यौं बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई ?

कस्साई।—महाराज ! गड़ेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेंड़ मेरे हाथ बेंची कि उसकी मशक बड़ी बन गई।

राजा।—अच्छा कस्साई को निकालो, गंड़ेरिये को लाओ।

(कस्साई निकाला जाता है गंड़ेरिया आता है)

क्यों बे ऊखपौंड़े के गंड़ेरिया ! ऐसी बड़ी भेंड़ क्यों बेचा कि बकरी मर गई ?

गंड़ेरिया।—महाराज ! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उसके देखने में मैंने छोटी बड़ी भेड़ का खयाल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

राजा।—अच्छा, इसको निकालो, कोतवाल को अभी सरब-मुहर पकड़ लाओ।

(गंडेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा जाता है)

क्यों बे कोतवाल! तैं ने सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गंडेरिये ने घबड़ा कर बड़ी भेड़ बेचा, जिससे बकरी गिर कर कल्लू बनियां दब गया?

कोतवाल।—महाराज महाराज! मैं ने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था।

मन्त्री।—(आप ही आप) यह तो बड़ा ग़ज़ब हुआ, ऐसा न हो कि यह बेवकूफ़ इस बात पर सारे नगर को फूंक दे या फांसी दे।

(कोतवाल से) यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली?

राजा।—हां हां, यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली कि उसकी बकरी दबी।

कोतवाल।—महाराज महाराज—

राजा।—कुछ नहीं, महाराज महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फांसी दो। दरबार बरखास्त।

(लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मन्त्री को पकड़ कर राजा जाते हैं)

[पटाक्षेप]

———

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

चतुर्थ अंक

स्थान यमपुरी

[यमराज बैठे हैं और चित्रगुप्त पास खड़े हैं]

(चार दूत, राजा, पुरोहित, मंत्री, गंडकी दास, शैव और वैष्णव को पकड़ कर लाते हैं)

१ दूत ।—(राजा के सिर में धौल मार कर) चल बे चल, अब यहां तेरा राज नहीं है कि छत्र चंवर होगा, फूल से पैर रखता है, चल भगवान यम के सामने, और अपने पाप का फल भुगत, बहुत कूद कूद के हिंसा की और मदिरा पी, सौ सुनार की न एक लोहार की (दो धौल और लगाता है) ।

२ दूत ।—(पुरोहित को घसीट कर) चलिए पुरोहित जी, दक्षिणा लीजिए, वहां आपने चक्र-पूजन किया था, यहां चक्र में आप चलिए, देखिए बलिदान का कैसा बदला लिया जाता है ।

३ दूत ।—(मंत्री की नाक पकड़ कर) चल बे चल, राज के प्रबन्ध के दिन गये, जूती खाने के दिन आये, चल अपने किये का फल ले ।

४ दूत ।—(गंडकी दास का कान पकड़ कर झोंका देकर) चल रे पाखंडी चल, यहां लम्बा टीका काम न आवेगा, देख वह सामने पाखंडियों का मार्ग देखनेवाले सर्प्प मुंह खोले बैठे हैं ।

(सब यमराज के सामने जाते हैं)

यम० ।—(बैष्णव और शैव से) आप लोग यहां आकर मेरे पास बैठिए ।

वै० और शै० ।--जो आज्ञा (यमराज के पास बैठ जाते हैं) ।

यम० ।--चित्रगुप्त, देखो तो इस राजा ने कौन कौन कर्म्म किये हैं ।

चित्र० ।—(बही देख कर) महाराज, सुनिए, यह राजा जन्म से पाप में रत रहा, इसने धर्म्म को अधर्म्म माना और अधर्म्म को धर्म्म माना, जो जी चाहा किया और उसकी व्यवस्था पण्डितों से ले ली, लाखों जीव का इसने नाश किया और हजारों घड़े मदिरा के पी गया पर आड़ सर्व्वदा धर्म्म की रक्खी, अहिंसा, सत्य, शौच, दया, शान्ति और तप आदि सच्चे धर्म्म इसने एक न किये, जो कुछ किया वह केवल वितंडा कर्म्म जाल किया, जिसमें मांस भक्षण और मदिरा पीने को मिले, और परमेश्वर प्रीत्यर्थ इसने एक कौड़ी भी नहीं व्यय की, जो कुछ व्यय किया सब नाम और प्रतिष्ठा पाने के हेतु ।

यम० ।—प्रतिष्ठा कैसी, धर्म्म और प्रतिष्ठा से क्या सम्बन्ध ?

चि० ।--महाराज, सर्कार अंगरेज़ के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उसको "स्टार आफ़ इण्डिया" की पदवी मिलती है ।

यम० ।—अच्छा ! तो बड़ा ही नीच है, क्या हुआ मैं तो उपस्थित ही हूं ।

" अन्तः प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः "

भला पुरोहित के कर्म्म तो सुनाओ।

चि०।—महाराज, यह शुद्ध नास्तिक है, केवल दम्भ से यज्ञोपवीत पहिने है, यह तो इसी श्लोक का अनुरूप है—

अन्तश्शाक्ता बहिश्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥

इस ने शुद्ध चित्त से ईश्वर पर कभी विश्वास नहीं किया, जो जो पक्ष राजा ने उठाये उस का समर्थन करता रहा और टके टके पर धर्म्म छोड़ कर इस ने मनमानी व्यवस्था दी, दक्षिणा मात्र दे दीजिये फिर जो कहिये उसी में पण्डित जी की सम्मति है, केवल इधर उधर कमंडलाचार करते इसका जन्म बीता और राजा के संग मे मांस मद्य का भी बहुत सेवन किया सैकड़ों जीव अपने हाथ से बध कर डाले।

यम०।—अरे यह तो बड़ा दुष्ट है, क्या हुआ मुझ से काम पड़ा है यह बचा जी तो ऐसे ठीक होंगे जैसा चाहिये, अब तुम मन्त्री जी के चरित्र कहो।

चित्र०।—महाराज, मन्त्री जी की कुछ न पूछिये, इसने कभी स्वामी का भला नहीं किया, केवल चुटकी बजा कर हां में हां मिलाया, मुंह पर स्तुति पीछे निन्दा, अपना घर बनाने से काम, स्वामी चाहे चूल्हे में पड़े, घूस लेते जन्म बीता, मांस और मद्य के बिना इस ने न और धर्म्म जाने न कर्म्म जाने

यह मन्त्री की व्यवस्था है, प्रजा पर कर लगाने में तो पहिले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया।

यम०।—भला ये श्रीगंडकीदास जी आये हैं इनका पवित्र चरित्र पढ़ो कि सुन कर कृतार्थ हों, देखने में तो बड़े लम्बे लम्बे तिलक दिये हैं।

चित्र०।—महाराज, ये गुरु लोग हैं, इनके चरित्र कुछ न पूछिये, केवल दम्भार्थ इन का तिलक मुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा, कभी भक्ति से मूर्त्ति को दंडवत् न किया होगा पर मन्दिर में जितनी स्त्रियां आईं उनको सर्व्वदा तकते रहे, महाराज, इन्होंने अनेकों को कृतार्थ किया है और समय तो मैं श्रीरामचन्द्र जी का श्रीकृष्ण का दास हूं पर स्त्री सामने आवे तो उससे कहैंगे मैं राम तुम जानकी, मैं कृष्ण तुम गोपी, और स्त्रियां भी ऐसी मूर्ख कि फिर इन लोगों के पास जाती हैं, हा! महाराज, ऐसे पापी धर्म्मबंचकों को आप किस नरक में भेजियेगा।

(नेपथ्य में बड़ा कलकल होता है)

यम०।—कोई दूत जाकर देखो यह क्या उपद्रव है।

१ दूत।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज, संयमनीपुरी की प्रजा बड़ी दुखी है, पुकार करती है कि ऐसे आज कौन पापी नरक में आये हैं जिनके अंग के वायु से हम लोगों का सिर घूमा जाता है और अंग जलता है,

इनको तो महाराज शीघ्र ही नरक में भेजें नहीं तो हम लोगों के प्राण निकल जायंगे।

यम०।—सच है ये ऐसे ही पापी हैं, अभी मैं इन का दंड करता हूं कह दो घबड़ांय न।

१ दूत।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है)।

यम०।—(राजा से) तुझ पर जो दोष ठहराये गये हैं बोल उनका क्या उत्तर देता है।

राजा।—(हाथ जोड़ कर) महाराज, मैंने तो अपने जान सब धर्म्म ही किया कोई पाप नहीं किया, जो मांस खाया वह देवता पितर को चढ़ा कर खाया और देखिये महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मणों ने भूख के मारे गोवध करके खा लिया पर श्राद्ध कर लिया था इससे कुछ नहीं हुआ।

यम०।—कुछ नहीं हुआ, लगैं इसको कोड़े।

१ दूत।—जो आज्ञा (कोड़े मारता है)।

राजा।—(हाथ से बचा बचा कर) हाय हाय दुहाई दुहाई, सुन लीजिये—

सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालंजरे गिरौ।
चक्रवाकाश्शरद्वीपे हंसास्सरसि मानसे॥
तेपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्रस्थिता दीर्घ मध्वानं यूयं किमवसीदथ॥

यह वाक्य लोग श्राद्ध के पहिले श्राद्ध शुद्ध होने को पढ़ते हैं फिर मैंने क्या पाप किया, अब देखिये, अंगरेजों के राज्य में इतनी

गोहिंसा होती है सब हिन्दू बीफ़ खाते हैं उन्हें आप नहीं दण्ड देते और हाय हम से धार्म्मिक की यह दशा, दुहाई वेदों की, दुहाई धर्म्मशास्त्र की, दुहाई व्यासजी की, हाय रे, मैं इन के भरोसे मारा गया।

यम० ।—बस चुप रहो, कोई है? यह अन्धतामिस्र नामक नरक में जायगा अभी इसको अलग रखो।

१ दूत ।—जो आज्ञा महाराज (पकड़ खींचकर एक ओर खड़ा करता है।)

यम० ।—(पुरोहित से) बोल बे ब्राह्मणाधम ! तू अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है?

पुरो० ।—(हाथ जोड़ कर) महाराज, मैं क्या उत्तर दूँगा, वेद पुराण सब उत्तर देते हैं।

यम० ।—लगैं कोड़े, दुष्ट वेद पुराण का नाम लेता है।

२ दूत ।—जो आज्ञा (कोड़े मारता है)।

पुरो० ।—दुहाई दुहाई, मेरी बात तो सुन लीजिये--यदि मांस खाना बुरा है तो दूध क्यों पीते हैं, दूध भी तो मांस ही है और अन्न क्यों खाते हैं अन्न में भी तो जीव है और वैसे ही सुरापान बुरा है तो वेद में सोमपान क्यों लिखा है और महाराज मैं ने तो जो बकरे खाये वह जगदम्बा के सामने बलि देकर खाये, अपने हेतु कभी हत्या नहीं की और न अपने राजा साहब की भांति मृगया की। दुहाई, ब्राह्मण व्यर्थ पीसा जाता है और महाराज मैं अपनी गवाही के हेतु

बाबू राजेन्द्रलाल के दोनों लेख देता हूं, उन्होंने वाक्य और दलीलों से सिद्ध कर दिया है कि मांस की कौन कहे गोमांस खाना और मद्य पीना कोई दोष नहीं, आगे के हिन्दू सब खाते पीते थे, आप चाहिये एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल मंगा के देख लीजिये।

यम०।—बस चुप, दुष्ट! जगदम्बा कहता है और फिर उसी के सामने उसी जगत के एक बकरे को अर्थात् उसके पुत्र ही को बलि देता है, अरे दुष्ट, अपनी अंबा कह, जगदम्बा क्यों कहता है, क्या बकरा जगत् के बाहर है? चाण्डाल सिंह को बलि नहीं देता—

"अजापुत्रं बलिं दद्याद्देवोदुर्बलघातकः"

कोई है? इसको सूचीमुख नामक नरक में डालो, दुष्ट कहीं का वेद पुराण का नाम लेता है, मांस मदिरा खाना पीना है तो योंही खाने में किसने रोका है, धर्म्म को बीच में क्यों डालता है, बांधो!

२ दूत।—जो आज्ञा महाराज (बांध कर एक ओर खड़ा करता है)।

यम०।—(मन्त्री से) बोल बे, तू अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है?

मन्त्री।—(आप ही आप) मैं क्या उत्तर दूं, यहां तो सब बात बेरंग है इन भयावनी मूर्त्तियों को देख कर प्राण तो सूखे जाते हैं उत्तर क्या दूं, हाय हाय इनके ऐसे बड़े बड़े दांत हैं कि मुझे तो एक ही कवर कर जायंगे।

यम० ।—बोल जल्दी ।

३ दूत ।—(एक कोड़ा मार कर) बोलता है कि नहीं ।

मन्त्री ।—(हाथ जोड़ कर) महाराज, अभी सोच कर उत्तर देता हूं (कुछ सोच कर) (चित्रगुप्त से) आप मुझे एक बेर राज्य पर भेज दीजिये, मैंने जितना धन बड़ी कठिनाई और बड़े बड़े अधर्म्म से एकत्र किया है सब आपको भेंट करूंगा और मैं निरपराधी कुटुम्बी हूं मुझे छोड़ दीजिये ।

चित्र० ।—(क्रोध से) अरे दुष्ट, यह भी क्या मृत्युलोक की कचहरी है कि तू हमें घूस देता है और क्या हम लोग वहां के न्यायकर्ताओं की भांति जंगल से पकड़ कर आये हैं कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते, जहां तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेनेवालों की भी होगी ।

यम० ।—(क्रोध से) क्या यह दुष्ट द्रव्य दिखाता है भला रे दुष्ट ! कोई है इसको पकड़ कर कुम्भीपाक में डालो ।

३ दूत ।—जो आज्ञा महाराज (पकड़ कर खींचता है) ।

यम० ।—अब आप बोलिए बाबाजी, आप अपने पापों का क्या उत्तर देते हैं ?

गंडकी ।—मैं क्या उत्तर दूंगा पाप पुण्य जो करता है ईश्वर करता है इसमें मनुष्य का क्या दोष है ।

ईश्वरस्सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्व्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया ॥

मैं तो आज तक सर्वदा अच्छा ही करता रहा ।

यम० ।—कोई है ? लगैं कोड़े दुष्ट को, अब ईश्वर फल भी भुगतेगा, हाय हाय ये दुष्ट दूसरों की स्त्रियों को मां और बेटी कहते हैं और लम्बा लम्बा टीका लगा कर लोगों को ठगते हैं ।

४ दूत ।—महाराज, यह किस नरक में जायगा (कोड़े मारता है) ।

गंडकी ।—हाय हाय दुहाई, अरे कंठी टीका कुछ काम न आया, अरे कोई नहीं है जो इस समय बचावे ।

यम० ।—यह दुष्ट रौरव नरक में जायगा जहां इसको ऐसे ही अनेक धर्म्मवंचक मिलैंगे ले जाओ सब को ।

(चारो दूत चारो को पकड़ कर घसीटते और मारते हैं और चारो चिल्लाते हैं)

चारो ।—अरे "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति ।"
हाय रे "अग्निष्टोमे पशुमालभेत ।"
अरे बाप रे "सौत्रामण्यां सुरां पिबेत् ॥"
भैया रे "श्रोत्रं ते शुंधामि ।"

(यही कह कर चिल्लाते हैं और दूत लोग उनको घसीट कर मारते मारते ले जाते हैं)

यम० ।—(शैव और वैष्णव से) आप लोगों की अकृत्रिम भक्ति से ईश्वर ने आपको कैलास और वैकुंठ के वास की आज्ञा दी है सो आप लोग जाइए और अपने सुकृत का फल भोगिए, आप लोगों ने इन धर्म्मवंचकों की दशा तो देखी ही है, देखिए पापियों को यह गति होती है और आप से सुकृतियों

को ईश्वर प्रसन्न होकर सामीप्य मुक्ति देता है सो लीजिए, आप लोगों को परम पद मिला, बधाई है, कहिए इससे भी विशेष कोई आपका हित हो तो मैं पूर्ण करूं।

शै० और वै० ।—(हाथ जोड़ कर) भगवन् इससे बढ़ कर और हम लोगों का क्या हित होगा तथापि यह नाटकाचार्य्य भरतऋषि का वाक्य सफल हो।

निज स्वारथ को धरम दूर या जग सों होई।
ईश्वर पद में भक्ति करैं छल बिनु सब कोई॥
खल के विष बैनन सों मत सज्जन दुख पावैं।
छुटै राजकर मेघ समय पै जल बरसावैं॥
कजरी ठुमरिन सों मोड़ि मुख सत कविता सब कोइ कहै।
यह कवि बानी बुध बदन में रवि ससि लौं प्रगटित रहै॥

(सब जाते हैं)

जवनिका गिरती है।

इति चतुर्थाङ्कः।

नील देवी

आठवां दृश्य

मैदान—वृक्ष
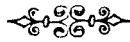
(एक पागल आता है)

पागल ।—मार मार मार—काट काट काट—ले ले ले—ईबी—सीबी—भीबी—तुरक तुरक तुरक—अरे आया आया

आया—भागो भागो भागो। (दौड़ता है) मार मार मार—और मार दे मार—जाय न जाय न—दुष्ट चाण्डाल गोभच्छी जवन—अरे हाँ रे जवन लालडाढ़ी का जवन—बिना चोटी का जवन—हमारा सत्यानाश कर डाला। हमारा हमारा हमारा। इसी ने इसी ने—लेना जाने न पावै। दुष्ट म्लेच्छ—हुं! हमको राजा बनावैगा। छत्र चवंर मुरछल सिंहासन सब—पर जवन का दिया—मार मार मार—शस्त्र न हो तो मन्त्र से मार। मार मार मार। हां हीं हूं फट चट पट—जवन पट—पट—छट पट आं ईं ऊं आकाश बांध पाताल—चोटी कटा निकाल। फः—हां हीं हौं—जवन जवन मारय मारय उच्चाटय··उच्चाटय··बेधय बेधय··नाशय··नाशय··फांसय फांसय—त्रासय त्रासय··स्वाहा फः सब जवन स्वाहा फः अब भी नहीं गया? मार मार मार। हमारा देश—हम राजा हम रानी। हम मन्त्री। हम प्रजा। और कौन? मार मार मार। तलवार तलवार। टूट गई टूटी। टूटी से मार। ढेले से मार। हाथ से मार। मुक्का जूता लात लाठी सोंटा ईंटा पत्थर—पानी सब से मार। हम राजा हमारा देश हमारा भेस हमारा पेड़ पत्ता कपड़ा लत्ता छाता जूता सब हमारा। ले चला। ले चला। मार मार मार—जाय न जाय न—सूरज में जाय चन्द्रमा में जाय जहां जाय तारा में जाय उतारा में जाय पारा में जाय। जहां जाय वहीं पकड़—मार मार मार। मींयां मींयां मींयां

चींयां चींयां चींयां। अल्ला अल्ला अल्ला हल्ला हल्ला हल्ला। मार मार मार। लोहे के नाती की दुम से मार पहाड़ की स्त्री के दिये से मार—मार मार—अण्ड का बण्ड का सण्ड का खण्ड—धूप छांह् चना मोती अगहन पूस माघ कपड़ा लत्ता डोम चमार मार मार। ईंट की आंख में हाथी का बान—बन्दर की थैली में चूने की कमान—मार मार मार—एक एक एक मिल मिल मिल छिप छिप छिप–खुल खुल खुल–मार मार मार—

(एक मियां को आता देख कर)

मार मार मार—मुसल मुसल मुसल—मान मान मान—सलाम सलाम सलाम कि मार मार मार—नबी नबी नबी—सबी सबी सबी—ऊंट के अण्डे की चरबी का खर। काग़ज़ के धप्पे कर सप्पे की सर—मार मार मार।

(मियां के पास जाकर)

तुरुक तुरुक तुरुक—घुरुक घुरुक घुरुक—मुरुक मुरुक मुरुक—फुरुक फुरुक फुरुक—याम शाम लीम लाम ढाम—

(मियां को पकड़ने को दौड़ता है)

मियां—(आप ही आप) यह तो बड़ी हत्या लगी। इससे कैसे पिण्ड छुटेगा—(प्रगट) दूर दूर।

पागल—दूर दूर दूर—चूर चूर चूर—मियां की डाढ़ी में दोज़ख की हूर—दन तड़ाक छू मियां की माईं में मोयीं की मूं—मार मार मार–मियां छार खार—

(मियां के पास जाकर अट्टहास करके)

रावण का साला दुर्योधन का भाई अमरुत के पेड़ को पसेरी बताता है—अच्छा अच्छा—नहीं नहीं तैं ने तो हम को उस दिन मारा था न ! हां हां यही है यही—जाने न पावे । मार मार—

(मियां की गरदन पकड़ कर पटक देता है और छाती पर चढ़ कर बैठता है)

रावण का साला दिल्ली का नवाब वेद की किताब—बोल हम राजा कि तू राजा—(मियां की डाढ़ी पकड़ कर खींचने से कृत्रिम डाढ़ी निकल आती है । विष्णुशर्मा को पहचान कर अलग हो जाता है) रावण का साला मियां का भेस विष्णु के कान में शर्मा का केस । मेरी शक्ति गुरु की भक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच डाढ़ी जगावे तो मियां सांच ।

(आंख से इङ्गित करता है)

मियां ।—(फिर डाढ़ी लगा कर) लाहौलवलाकूअत क्या बेख़बर पागल है । इसके घर के लोग इसके लौटने के मुन्तज़ीर हैं यह यहीं पड़ा है ।

पागल ।—पड़ा घड़ा सड़ा—घूम घाम जड़ा—एक एक बात—जात सात धात—नास नास नास—घास छास फास ।

मियां—क्या सचमुच–दरहक़ीक़त–यह बड़ा भारी पागल है ।

पागल—सचमुच नास—राजा आकास—ढाल बे ढाल मियां मतवाल ।

(आंख से दूर जाने को इङ्गित करता है ।) (मियां आगे बढ़ते हैं — यह पीछे धूल फेंकता दौड़ता है)

मार मार मार । बरसा की धार । लेना जाने न पावै । मियां का खचर (दोनों एकान्त में जाकर खड़े होते हैं)

मियां—(चारो ओर देख कर) अरे बसन्त ! क्या सचमुच सर्वनाश हो गया ?

पागल ।—पण्डित जी ! कल सबेरी रात ही महाराज ने प्राण त्याग किये (रोता है)

मियां ।—हाय ! महाराज, हम लोगों को आप किसके भरोसे छोड़ गये ! अब हम को इन नीचों का दासत्व भोगना पड़ैगा ! हाय ! (चारो ओर देख कर) हां, समाचार तो कहो क्या हुआ ।

पागल ।—कल उन दुष्ट यवनों ने महाराज से कहा कि तुम जो मुसलमान हो जाओ तो हम तुम को अब भी छोड़ दें । इस समय वह दुष्ट अमीर भी वहीं खड़ा था । महाराज ने पिंजड़े में से उस के मुंह पर थूक दिया, और क्रोध कर के कहा कि दुष्ट ! हम को पिंजड़े में बन्द और परवश जान कर ऐसी बात कहता है । चत्री कहीं प्राण के भय से दीनता स्वीकार करते हैं । तुझ पर थू और तेरे मत पर थू ।

मियां—(घबड़ा कर) तब तब ।

पागल ।—इस पर सब यवन बहुत बिगड़े । चारो ओर से पिंजड़े के भीतर शस्त्र फेंकने लगे । महाराज ने कहा इस बन्धन में

मरना अच्छा नहीं। बड़े बल से लोहे के पिंजड़े का डंडा खींच कर उखाड़ लिया और पिजड़े के बाहर निकल उसी लोहे के डंडे से सत्ताईस यवनों को मार कर उन दुष्टों के हाथ से प्राण त्याग किये। हाय! (रोता है)

मियां।—(चारों ओर देख कर) और अब क्या होता है? महाराज का शरीर कहाँ है? तुम ने यह सब कैसे जाना?

पागल।—सब इन्हीं दुष्टों के मुख से सुना। इसी भेष में घूमते हैं। महाराज का शरीर अभी पिंजड़े में रक्खा है। कल जशन होगा। कल सब शराब पीकर मस्त होंगे। (चारो ओर देख कर) कल ही अवसर है।

मियां।—तो कुमार सोमदेव और महारानी से हम जाकर यह वृत्त कह देते हैं, तुम इन्हीं लोगों में रहना।

पागल।—हां, हम तो यहीं हुई हैं। (रोकर) हम अब स्वामी के बिना वहां जा ही कर क्या करैंगे।

मियां।—हाय! अब भारतवर्ष की कौन गति होगी? अब त्रैलोक्य ललाम सुता भारत कमलिनी को यह दुष्ट यवन यथासुख दलन करैंगे। अब स्वाधीनता का सूर्य्य हम लोगों में फिर न प्रकाश करैगा। हाय! परमेश्वर तू कहां सो रहा है। हाय! धार्म्मिक वीर पुरुष की यह गति!
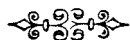
भारत-जननी

भारत माता।—(आंखें खोल कर) हाय क्या हुआ ? क्या लक्ष्मी अन्तर्ध्यान हो गई ? हा ! मैं ऐसी पापिनी हूं कि नेत्रों के सामने पर भी उसे आंख भर न देखा, भली भांति उसे पहिचान भी न सकी (चिन्ता से) नहीं नहीं अन्तर्ध्यान नहीं हुई, अभी तो हमको बहुत कुछ कह रही थी बहुत उरहना देती थी और बहुत प्रबोध करती थी फिर क्यों कुछ कहते कहते और रोते रोते दूर चली गई ? क्या कहा ! (सोच के) "जाउं जलधि के पारा" हाय ! (रोने लगी) फिर हमारी और हमारी सन्तति की लक्ष्मी बिना क्या गति होगी ? (सोच से) तो क्या इन लड़कों को जगा दें ? क्या सब वृत्तान्त इन से कह दें ? नहीं जगाने का काम नहीं ये सब चिरकाल से गाढ़ निद्रा में सो रहे हैं, इन्हें सोने ही दें (सोच कर) नहीं नहीं भला यह कुछ सोते थोड़े ही हैं, इन्हें तो अज्ञानान्धकार में पड़ने के कारण दिगभ्रम हो रहा है और इसी हेतु नेत्र निमीलित कर इस दशा में पड़े हैं। हाय ! मेरे बेटे अन्न जल न मिलने के कारण पिपासाकुलित सर्प की भांति बराबर दीर्घ श्वास ले रहे हैं। हाय मैं कैसी पापिनी हूं, क्रूरकर्मा, नृशंस हृदया हूं कि अपनी सन्तति की ऐसी दशा देख कर भी जीती हूं। हा विधाता ! मेरे प्राण शतधा हो कर अभी क्यों

DBA000015055HIN

का हृदय तो ऐसा कठोर कदापि स्वप्न में भी नहीं होता। जान पड़ता है कि अभी कुछ और भी शेष है जिस के हेतु ईश्वर मेरे प्राण का शीघ्र ही अन्त नहीं कर देता (आंसू पोछ कर एक का हाथ पकड़ के) बेटा उठो, इस प्रकार सोने से कुछ काम न चलेगा, यह पूर्वकाल का समय नहीं, तुम्हारा वह दिन गया, अब शीघ्र उठो और इस रोग के निवृत्त करने को सब मिल कर ऐक्यावलम्बन कर स्वस्थचित्त हो कोई उपाय सोचो, नहीं तो रोग बढ़ जाने पर फिर कुछ न बन पड़ेगी। (एक को उठाती है तो दूसरा सोता है और दूसरे को उठाती है तो पहिला सो जाता है, इसी भांति सब को भारतमाता ने उठाया किन्तु सब के सब फिर पूर्ववत् सो गए) हाय! यह क्या है? ये किस दशा में पड़े हैं? वत्स! तुम लोगों की क्या गति हो रही है, इतने काल से मैं सोचती हूं किन्तु कुछ ध्यान में नहीं आता कितना प्रबोधन किया परन्तु सब निष्फल हुआ (कुछ सोच के) हां अब मैं ने समझा अभी इन के चेतने का समय नहीं आया, अभी जो कुछ प्रयत्न किया जायगा सब निष्फल होगा, देखो एक को उठाओ तो एक सोता है और इस को उठाओ तो वह सोता है। तो फिर क्या हताश हो कर इन को ऐसे ही रहने दें? पर इस से तो सम्बोधन नहीं होता, अच्छा तो एक बार और उद्योग करें।

पृथ्वीराज जैचन्द कलह करि जवन बुलायो।
तिमिरलङ्ग चगेज आदि बहु नरन कटायो॥

अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो।
विषय वासना दुसह मुहम्मद शह फैलायो॥
तब लौं सोए वत्स तुम, जागे नहिं कोऊ जतन।
अब तौ रानी विक्टोरिया, जागहु सुत भय छाड़ि मन॥
जहां बिसेसर सोमनाथ माधव के मन्दर।
तहं महजिद बन गई होत अब अल्ला अकबर॥
जहं भूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर।
तह अब रोअत सिवा चहूं दिशि लखियत खंडहर॥
जहं धन विद्या बरसत रही सदा अबै, वाही ठहर।
बरसत सब ही बिधि बेबसी अब तो चेतौ वीर वर॥

पहिला।—(आंख मल कर) मां क्यौं बुलाती है ?

दूसरा।—बड़ी गाढ़ी नींद में थे क्यों वृथा जगाया मां !

तीसरा।—हम को सोने दो मां, बड़ी नींद आती है क्यों नाहक दिक करती हो ?

भारतमाता।—वत्स ! कब तक इस प्रकार से तुम सब निद्रित रहोगे, अब सोने का समय नहीं, एक बेर आंखें खोल भली भांति पृथ्वी की दशा को तो देखो, तुम्हें कुछ नहीं मालूम कि तुम्हारे चारो ओर क्या हो रहा है, यह तो तुम लोग देखौ कि तुम्हारी अब क्या अवस्था हो रही है, क्या थे और क्या हो गये, एक बेर तो भला अपने मन में बिचारो, निरवलम्बा शोकसागरमग्ना, अभागिनी अपनी जननी की दुरवस्था को एक बेर तो आंखें खोल के देखो। बेटा हमारा धन, अषणभू

बसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गये, अब हम निराधार हो रही हैं, तेल भी नहीं मिलता कि केशों में लगावैं। यह मलिन शतग्रन्थि वस्त्र मैं कब तक पहिरूं हाय ! जो अंगरेजों का राज्य न होता तो अबतक तो मेरे प्राण न बचते। बेटा तुम लोग अब उठो और अपने इस दुखिया माता को घोर दुःख से उद्धार करो।

पहिला।—मां फिर अब हम क्या करैं ?

दूसरा।—हम अपने माता के कष्ट को कैसे दूर करैं !

तीसरा।—मा तुम किस्से कहती हो ! हम लोग तो अब मनुष्य नहीं, हम लोग तो अब आलसी हो गए हैं, हमारी गणना तो अब अज्ञान तिमिरावृत, कूपनिवासी पिशाचगणों में है; तो फिर हम क्या करैं ?

भारतज०।—हाय ! हाय ! क्या सचमुच हमारे पुत्रों की अब ऐसी दीन दशा हो गई है कि ये लोग कुछ भी नहीं कर सकते। अरे मेरे इसी अंक में आगे कैसे कैसे महात्मा गण हुए हैं जिनके यशःसौरभ से सारी पृथ्वी आमोदित थी। इसी हमारे अंक आलबाल में कैसे पुण्य कल्पतरु हुए हैं जिन की कीर्त्तिशाखा दशों दिशा में भी नहीं समा सकी। इसी हमारे अंक में कैसे कैसे लोग लालित पालित हुए हैं जिन का आज दिन समस्त संसार आदरपूर्वक नाम ग्रहण करता है, जिन्हों ने अपने बुद्धि बल से मुझ को सब देश ललनाओं का शिरोमणि कर रक्खा था।

"जाबाली जैमिनि गरग पातञ्जलि शुकदेव।
रहे हमारेहि अंक में कबहिं सबै भुवदेव॥
याही मेरे अंक में रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिन के भारत गान सों भारत बदन प्रकास॥
याही मेरे अंक में कपिल सूत दुर्वास।
याही मेरे अंक में शाक्यसिंह सन्यास।
याही मेरे अंक में मनु भृगु आदिक होय॥
तब तौ तिन कौ करत हो आदर जग सब कोय॥"

सो उसी भारतभूमि में अब सब हतज्ञान हो रहे हैं और कोई इन को सम्भालने वाला नहीं। कोई काल ऐसा था कि इस भूमि की स्त्रियां भी विद्या संभ्रम, शौर्य्य, औदार्य्य में जगत् विख्यात थीं वहां के पुरुष अब उद्यमशून्य हो केवल सूद या नौकरी पर सन्तोष कर के बैठे हैं, उद्योग किस चिड़िया का नाम है इस को मानो स्वप्न में भी नहीं जानते।

हाय! जगत् विख्यात हमारे पूर्व समय के पुत्रगण किधर गये। क्या उन की आत्मा भी यहां नहीं है जो इस अभागिनि दुखिया माता को इस समय सम्बोधन दे।

भारत-दुर्दशा

तीसरा दृश्य

मैदान फ़ौज के डेरे दिखाई पड़ते हैं।

(भारत दुर्दैव* आता है)

भा० दु०—कहां गया भारत मूर्ख! जिस को अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है। देखो तो अभी इस की क्या क्या दुर्दशा होती है।

(नाचता और गाता हुआ) अरे!

उपजा ईश्वर कोप से, औ आया भारत बीच।
छार खार सब हिंद करूं मैं, तो उत्तम नहिं नीच॥
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी।
कौड़ी कौड़ी का करूं, मैं सब को मुहताज।
भूखे प्रान निकालूं इन का, तो मैं सच्चा राज॥ मुझे०
काल भी लाऊं महंगी लाऊं, और बुलाऊं रोग।
पानी उलटा कर बरसाऊं, छाऊं जग में सोग॥ मुझे०
फूट बैर औ कलह बुलाऊं, ल्याऊं सुस्ती जोर।
घर घर में आलस फैलाऊं, छाऊं दुख घनघोर॥ मुझे०

---

* क्रूर आधा क्रिस्तानी आधा मुसलमानी भेष, हाथ में नंगी तलवार लिये।

काफ़िर काला नीच पुकारूं, तोड़ूं पैर औ हाथ।
दूं इन को सन्तोष खुशामद, कायरता भी साथ॥ मुझे०
मरी बुलाऊं देस उजाड़ूं, महगा कर के अन्न।
सब के ऊपर टिकस लगाऊं, धन्न है मुझ को धन्न।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी॥

(नाचता है)

अब भारत कहां जाता है, ले लिया है। एक तस्सा बाकी है, अब की हाथ में वह भी साफ़ है! भला हमारे बिना और ऐसा कौन कर सकता है कि अङ्गरेज़ी अमलदारी में भी हिन्दू न सुधरे! लिया भी तो अङ्गरेज़ों से औगुन! हहाहा! कुछ पढ़े लिखे मिल कर देश सुधारा चाहते हैं! हहा हाहा! एक चने से भाड़ फोड़ेंगे। ऐसे लोगों को दमन करने को मैं ज़िले से हाकिमों को न हुक्म दूंगा कि इन को डिसलायलटी में पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से ख़ारिज कर के जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उस को उतना बड़ा मेडल और ख़िताब दो। हें! हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं, मूर्ख! यह क्यों? मैं अपनी फौज ही भेज के न सब चौपट करता हूं। (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे कोई है? सत्यानाश फ़ौजदार को तो भेजो।

(नेपथ्य में से "जो आज्ञा" का शब्द सुन पड़ता है)

देखो मैं क्या करता हूं। किधर किधर भागैंगे॥

(सत्यानाश फ़ौजदार आते हैं)

(नाचता हुआ)

स० फौ०हमारा नाम है सत्यानास। आए हैं राजा के हम पास ॥
धर के हम लाखों ही भेस। किया चौपट यह सारा देस ॥
बहुत हमने फैलाए धर्म्म। बढ़ाया छुआछूत का कर्म्म ॥
होके जयचन्द हमने इकबार। खोलही दिया हिन्द का द्वार ॥
हलाकू चंगेज़ो तैमूर। हमारे अदना अदना सूर ॥
दुरानी अहमद नादिर साह। फ़ौज के मेरे तुच्छ सिपाह ॥
है हम में तीनो कल बल छल। इसी से कुछ नहिं सकती चल ॥
पिलावैंगे हम खूब शराब। करैंगे सब को आज खराब ॥

भा० दु०—अहा सत्यानाश जी आए। आओ, देखो अभी फ़ौज को हुक्म दो कि सब लोग मिल के चारो ओर से हिन्दुस्तान को घेर लें। जो पहिले से घेरे हैं उनके सिवा औरों को भी आज्ञा दो कि बढ़ चलैं।

स० फौ०—महाराज! "इन्द्रजीत सन जो कछु भाखा, सो सब जनु पहिलहि करि राखा।" जिस को आज्ञा हो चुकी है वे तो अपना काम कर ही चुके और जिस को जो हुक्म हो कह दिया जाय।

भा० दु०—किस ने किस ने क्या क्या किया है ?

स० फौ०—महाराज! धर्म्म ने सब के पहिले सेवा की।

रचि बहु बिधि के बाक्य पुरानन माँहि घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए ॥
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊंच बनायो।
खान पान सम्बन्ध सबन सों बरजि छुड़ायो ॥

जन्मपत्र बिधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बालकपन में ब्याहि प्रीति बल नास कियो सब।
करि कुलीन के बहुत ब्याह बलबीरज मारयौ।
बिधवा ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचारयौ॥
रोकि बिलायत गमन कूपमण्डूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो॥
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब बिमुख किये हिंदू घबराई॥

भा॰ दु॰—आहा! हाहा! शाबाश! शाबाश! हां और भी कुछ धर्म्म ने किया?

सा॰—हां महाराज।

अपरस सोल्हा छून रचि, भोजन प्रीति छुड़ाय।
किये तीन तेरह सबै, चौका चौका लाय॥

भा॰ दु॰—और भी कुछ?

सा॰—हां,

रचि कै मत वेदान्त को, सब कों ब्रह्म बनाय।
हिन्दुन पुरुषोत्तम कियो, तोरि हाथ अरु पाय॥

महाराज, वेदान्त ने बड़ा ही उपकार किया। सब हिन्दू ब्रह्म हो गये। किसी को इतिकर्त्तव्यता बाक़ी ही न रही। ज्ञानी बन कर ईश्वर से विमुख हुए, रूक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसी से स्नेहशून्य हो गए। जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहां? बस जय शंकर की।

भा० दु०—अच्छा, और किस ने किस ने क्या किया ?

स०—महाराज, फिर संतोष ने भी बड़ा काम किया। राजा प्रजा सब को अपना चेला बना लिया। अब हिन्दुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं। राज न रहा, पेनशन सही। रोजगार न रहा, सूद ही सही। वह भी नहीं, तो घर ही का सही, 'सन्तोषं परमं सुखं', रोटी ही को सराह सराह के खाते हैं। उद्यम की ओर देखते ही नहीं। निरुद्यमता ने भी सन्तोष को बड़ी सहायता दी। इन दोनों को बहादुरी का मेडल जरूर मिलै। व्यापार को इन्हीं ने मार गिराया।

भा० दु०—और किसने क्या किया ?

स०—फिर महाराज जो धन की सैना बची थी उस को जीतने को भी मैं ने बड़े बांके वीर भेजे। अपव्यय अदालत, फ़ैशन और सिफ़ारिश इन चारों ने सारी दुशमन की फ़ौज तितिर बितिर कर दी। अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ़ किए। फ़ैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अंधाधार कर दिया और सिफ़ारिश ने भी खूब ही छकाया। पूरब से पश्चिम और पश्चिम से पूरब तक पीछा कर के खूब भगाया। तुहफ़े और घूस और चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए कि "बम बोल गई बाबा की चारो दिसा" धूम निकल पड़ी। मोटा भाई बना बना कर मूँड़ लिया। एक तो खुद ही यह सब पड़िया के ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाई गई, बराबरी का

झगड़ा उठा, धायं धायं गिनी गई, वर्णमाला कण्ठ कराई, बस हाथी के खाए कैंत हो गए। धन की सैना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली।

भा० दु०—और भला कुछ लोग छिपाकर भी दुशमनों की ओर भेजे थे ?

स०—हां, सुनिए। फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रुमार्जन और निर्बलता इन एक दरजन दूती और दूतों को शत्रुओं की फौज में हिला मिला कर ऐसा पंचामृत बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घंटा पर के गरुड़ हो गए। फिर अन्त में भिन्नता गई। इस ने ऐसा सब को काई की तरह फाड़ा कि भाषा, धर्म्म, चाल, व्यवहार, खाना, पीना सब एक एक योजन पर अलग अलग कर दिया। अब आवैं बचा ऐक्य! देखैं आही के क्या करते हैं!

भा० दु०—भला भारत का शस्य नामक फौजदार अभी जीता है कि मर गया ? उस की पलटन कैसी है ?

स०—महाराज! उस का बल तो आप की अतिवृष्टि और अनावृष्टि नामक फौजों ने बिलकुल तोड़ दिया। लाही, कीड़े, टिड्डी और पाला इत्यादि सिपाहियों ने खूब ही सहायता की। बीच में नील ने भी नील बन कर अच्छा लङ्कादहन किया।

भा० दु०—वाह! वाह! बड़े आनन्द की बात सुनाई। तो अच्छा तुम जाओ। कुछ परवाह नहीं, अब ले लिया है। बाक़ी

साकी अभी सपराए डालता हूं। अब भारत कहां जाता है। तुम होशियार रहना और रोग, महर्घ, कर, मद्य, आलस और अन्धकार को जरा क्रम से मेरे पास भेज दो।

श०—जो आज्ञा। (जाता है)

भा० दु०—अब उस को कहीं शरण न मलैगी। धन, बल और विद्या तीनों गईं। अब किस के बल कूदैगा?

(पट्टोत्तोलन)

सती-प्रताप

सातवां दृश्य

(स्थान घोर अरण्य एक बड़े वृक्ष के नीचे सत्यवान मूर्छित सा पड़ा है और सावित्री उस का सिर अपने गोद में रक्खे अत्यन्त व्याकुल बैठी है)

सावित्री।—प्राणनाथ—जीवनधन—यह तुम्हें क्या हुआ? अरे अभी तो अच्छे विच्छे हम से बिदा हो कर आए थे, अभी यह क्या दशा हो गई? हाय! यह गुलाब की पत्ती सा कोमल सुन्दर मुख इतनी ही देर में ऐसा श्याम क्यों हो गया? अरे कोई दौड़ो रे—किसी वैद्य गुणी को बुलाओ—(कुछ ठहर कर) हाय! यहां कौन बैठा है जो मेरी इस विपत्ति में सहायता करेगा—हे दीनानाथ अशरण शरण!

मुझे सिवाय तेरे और कोई अवलम्ब इस समय नहीं है— देखो तुम्हारे रहते मैं अबला इस घोर बन में अनाथों की तरह लूटी जाती हूं—मुझे बचाओ।

सत्यवान।—(कुछ सचेत हो कर सावित्री की ओर देख कर) प्रिये! तुम यहां कहां? मैं तो चला। मेरे कारण तुम्हें बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े, क्षमा करना और कभी कभी इस अभागे का भी स्मरण करना—(कुछ रुक कर) पिता से मेरी बहुत तरह से प्रणाम कहना और कहना कि मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि मैं आप की सेवा बहुत कम करने पाया, मेरे अपराधों को आप क्षमा करें। मातृचरण में भी प्रणाम पहुंचाना। मुझे बड़ा ही दुख है कि मैं अन्त समय उन के दर्शन न कर सका—तुम अपने सास ससुर की सेवा बड़ी सावधानता से करना, भगवान के चरणों में सदा स्नेह रखना (घबराहट नाट्य कर के) उह! अब चलें, कंठ सूखा जाता है। बड़ी प्यास लगी है पानी—पानी—

सावित्री।—(घबड़ा कर) हाय! यहां पात्र भी नहीं कि पानी लाऊं (दौड़ कर अंचल में भिगाकर पास के तालाब से पानी लाकर सत्यवान के मुंह में निचोड़नी है।)

सत्यवान।—(कुछ स्थिर हो जाता है) धन्य देवी धन्य! इस समय तुमने मानों अमृत के बून्द चुआ दिए—

सावित्री।—इन सब बातों को रहने दीजिए यह बतलाइए अभी तो आप अच्छे चंगे थे अभी यहां क्या हो गया?

सत्यवान।—(मुमुर्षु अवस्था में) मैं—तुम—से—विदा हो कर लकड़ी चुनने आया, इस झाड़ी में घुस कर उस सूखे वृक्ष की लकड़ी ज्यों ही काटी मुझे जान पड़ा मानों मेरा सिर एकदम उड़ा जाता है। ऐसी भारी वेदना मेरे सिर में अकस्मात् उठी कि मैं किसी तरह सम्हल न सका, किसी किसी तरह झाड़ी से निकला, यहां तक आते आते तो असुध हो कर गिर ही पड़ा। फिर मुझे कुछ ज्ञान नहीं। जब ज्ञान हुआ तो तुम्हें बैठे पाया—उह! बड़ी ज्वाला है, शरीर झुका जाता है—अब चला—(मूर्छित हो जाता है)।

(नेपथ्य में गान)

यमदूत हैं हम भूत हैं मजबूत हैं रन में।
सोने के घर को खाक हमी करते हैं छन में॥

सावित्री।—हाय! क्या यमदूत आ गये? क्या अब मुझ से प्राणनाथ का वियोग होहीगा? कभी नहीं—कभी नहीं—यदि हमारा सतीत्व सत्य है तो देखते हैं यमदूतों की क्या सामर्थ्य है जो प्राणनाथ के अंग को छू भी सकें।

(अन्धकार हो जाता है और यमदूत आते हैं)

यमदूतगण।—(गाते हैं और नाचते हैं)

यमदूत हैं हम भूत हैं मज़बूत हैं रन में।
सोने के घर को ख़ाक हमी करते हैं छन में॥
हो बादशाह या कि भिखारी हो कोई हो।
ज्ञानी हो कि पापी हो जो चाहे जोई हो॥

इक दिन सभी हमारे ही चंगुल में फंसेंगे।
उस दिन किसी फरेब से हम से न बचेंगे॥
हम मुश्क बांध बांध के सब को ले जायंगे।
हम कूद कूद खूब ही डंडे लगायंगे॥
हम जिसको लेंगे उस से ज़रा भी न डरेंगे।
जो कुछ कि जी में आवैगा हम वही करेंगे॥
यमदूत हैं हम भूत हैं—

एक दूत।—अरे तुम सब नाचा ही गाया करोगे या कुछ काम भी करोगे?

सब।—(घबड़ा कर) हां हां चलो भाई, सत्यवान के प्राण को अभी प्रभु के पास ले चलना है (सब आगे बढ़ते हैं)।

एक दूत।—(डर कर) हैं! यहां तो आग सी जल रही है किस की सामर्थ्य है जो इस में कूदैगा। (सब आश्चर्य और भय से उसी ओर देखते हैं)

दूसरा।—सच तो; हम ने भी असंख्य जीवों के प्राण लिए, यही करते जन्म बीता, पर ऐसा चमत्कार कभी नहीं देखा था। अब महाराज से चल कर क्या कहैंगे?

तीसरा।—छि—तुम सब निरे डरपोक हो, हम लोग रात दिन के नरकाग्नि में रहनेवाले लोग हमारा इस आग से क्या होना है, देखो हम अभी लाते हैं (सत्यवान के पास तक जाता है और बड़े ज़ोर से चिल्ला कर "अरे बाप रे मरे रे" कह कर अचेत हो गिरता है)।

सब—(मारे डर के कांपते हुए) भाइयो ! जान बचाना हो तो यहां से भागो जो दशा देखते हैं वही वहां निवेदन कर देंगे।

एक दूत।—ज़रा ठहरो एक बेर इन से यह तो कहना चाहिये कि ये हट जायं देखैं क्या कहती हैं तब वैसा चल कर कहैंगे।

दूसरा।—तुम्हें अपनी जान भारी पड़ी हो तो कहो हम तो न कहैंगे।

पहिला।—(साहसपूर्वक दूर से हाथ जोड़ कर) देवी ! तुम ज़रा सा हट जाओ तो हमारे प्रभु की जो आज्ञा है वह कर के हम लोग शीघ्र ही प्रभु के पास जांय। अब व्यर्थ दुःख करने का क्या फल।

सावित्री—(तीक्ष्ण दृष्टि से देख कर) ख़बरदार एक पैर भी आगे मत रखना। जा कर अपने प्रभु से कह दो कि प्राण रहते हुए इस शरीर को न छूने दूंगी।

सब—(घबड़ा कर) अरे बाप रे जले रे (सब भागते हैं)

(नेपथ्य में गान)

राग पीलू या जंगला।

जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान॥
अनसूया सीता सावित्री इन के चरित प्रमान।
पतिदेवता तीय जग धन धन गावत बेद पुरान॥
धन्य देस कुल जहं निवसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य ब्याह असथान॥

सब समर्थ पतिव्रता नारी इन सम और न आन।
याही तें स्वर्गहु में इन को करत सबै गुन गान ॥१।"

(यमराज का हाथ में लोह दंड लिए हुए प्रवेश)

यम।—(आपही आप) आहा! देखो सतीत्व का कैसा तेज है मानो प्रलयाग्नि बल रही है। मुझे यह निष्ठुर कार्य करते इतने दिन हो गए पर ऐसा अपूर्व दृश्य कभी नहीं देखा। (प्रगट) देवी! तुम क्यों वृथा हठ करती हो जब दिन पूरे हो जाते हैं तो किसी की सामर्थ्य नहीं है जो जीव को बचावै। तुम ज़रा हट जाओ हम सत्यवान के प्राण वायु को ले जायं।

सावित्री।—(हाथ जोड़ कर) महाराज! ऐसी बात मत कहिए। इस के सुनने से हमारा कलेजा फटा जाता है। सत्यवान हमारा जीवनसर्वस्व है, इस को छोड़ कर हम कहां हट सकती हैं?

यम।—सावित्री! तुम्हारे पवित्र सतीत्व में कुछ सन्देह नहीं—पर पूर्व जन्म के पाप का फल भोगना ही पड़ता है। विधाता के लेख को कौन मिटा सकता है? अब व्यर्थ हठ मत करो, हट जाओ।

सावित्री।—धर्मराज! यदि आप को ऐसा ही आग्रह है तो मुझे भी ले चलिए; सत्यवान बिना मैं जी ही कर क्या करूंगी?

यम।—यह हमारी सामर्थ्य से बाहर है; अभी तुम्हारे दिन नहीं पूरे हुए हैं; अच्छा हमें अब बहुत देर होती है।

सावित्री।—हाय! आप को मुझ अबला पर तनिक भी दया नहीं आती!

यम।—सावित्री! हम क्या करें हमारे क्षमता के बाहर जो बात है वह हम कैसे कर सकते हैं? सत्यवान के सिवाय तुम जो कुछ चाहो हम देने को प्रस्तुत हैं।

सावित्री।—महाराज! मेरे बूढ़े सास ससुर की आंखें जाती रही हैं सो आप कृपा कर के दें।

यम०।—एवमस्तु। अच्छा ले अब हट जाओ। (सावित्री हट जाती है और यमराज सत्यवान के प्राणवायु को लेकर जाते हैं और पीछे पीछे सावित्री भी जाती है)

(नेपथ्य में गान)

"तुझ पर काल अचानक टूटैगा।
गाफिल मत हो लवा बाज ज्यों हंसी खेल में लूटैगा।
कब आवैगा कौन राह से प्रान कौन बिधि छूटैगा।
यह नहिं जानि परैगी बीचहि यह तन दरपन फूटैगा॥
तब न बचावैगा कोई जब काल दंड सिर कूटैगा।
हरीचंद एक वही बचैगा जो हरिपद रस घूटैगा।।"

(वह पर्दा हट जाता है—दूसरा घोर अरण्य अन्धकार मय दिखाई पड़ता है। आगे आगे यमराज पीछे पीछे रोते हुए सावित्री का प्रवेश।)

यम।—(फिर कर सावित्री को देख कर) देवि! तुम क्यों हमारे

साथ आती हो ? जाओ अपने घर। होना था सो तो हो चुका।

सावित्री।—सूने घर में जाकर क्या करैं। जहां सत्यवान वहीं सावित्री।

यम।—तुम्हारे सतीत्व से हम अत्यन्त संतुष्ट हुए; सत्यवान के प्राण व्यतीत और जो इच्छा हो सो मांगो।

सावित्री।—महाराज ! जो आप प्रसन्न हैं तो हमारे ससुर का राज्य जो शत्रुओं ने छीन लिया है सो फिर मिलै।

यम।—तथास्तु। अच्छा, अब तुम फिर जाओ।

(यमराज आगे बढ़ते हैं सावित्री पीछे पीछे चलती है। वह पर्दा उठ जाता है दूसरा दृश्य भयानक बन महा अन्धकार)

यम।—(पीछे देख कर) ऐं ! तुम अभी भी नहीं गई ! क्यों व्यर्थ का प्रयास करती हो—जाओ—अब सत्यवान का मिलना असम्भव ही समझौ।

सावित्री।—धर्मराज ! एक बात और भी प्रार्थनीय है।

यम।—सत्यवान के सिवाय और जो कुछ चाहो मिल सकता है।

सावित्री।—महाराज ! मेरे श्वशुर कुल में वंश चलाने वाला कोई नहीं है इस से मुझे यह बर दीजिये कि सत्यवान से मुझे एक सौ लड़के हों।

यम।—तथास्तु।

(यमराज आगे बढ़ते हैं सावित्री उन का अनुसरण करती है। वह

पर्दा उठ जाता है । दूसरा दृश्य स्वर्ग का द्वार महा उज्वल तीन अप्सरा हाथ में माला लिए खड़ी हैं)

अप्सरागण—आओ सावित्री के जीवन ।

बहुत दिनन की आसा पूजी अधर सुधा रस पीवन ।।
तुव हित प्रेम मालिका गूथी पहिरावैं निज हाथ ।
निर्भय ह्वै नन्दनबन बिहरैं पलहूं तजैं न साथ ।।१।।

यम ।—(पीछे सावित्री को देख कर) क्या तुम अभी तक हमारे साथ हो है ?

सावित्री ।—महाराज ! क्या अपने दिये हुए बर को अभी भूल गए ? सत्यवान का प्राण वायु मुझे दीजिए ।

यम ।—धन्य देवि धन्य ! मैं तुम से हारा । यद्यपि विधाता के नियम के विरुद्ध है तथापि मैं तुम्हें सत्यवान का जीवनदान करता हूं (सत्यवान का प्राणदान) आज से मैंने जाना सती-नारी को सब कुछ करने की सामर्थ्य है; संसार में सती का अकर्तव्य कोई काम नहीं है । सावित्रि ! तुम्हारी यह विमल यशध्वजा अनंत काल तक संसार में उड़ती रहैगी; तुम्हारा पवित्रगुण गान संसार को पावन करता रहैगा, और तुम्हारा पूजनीय नाम पतिव्रता स्त्रियों का सर्वस्व होगा । अहा ! इस अलौकिक सतीत्व के आगे मुझे भी पराजित होना पड़ा ! सतीत्व की जय—सावित्री की जय (यही शब्द चारो ओर से प्रतिध्वनित होता है और आकाश से पुष्पवृष्टि होती है । तीनों अप्सरा सावित्री को बीच में कर के नाचती और गाती हैं)

गाओ सब मिलि प्रेम बधाई ।
पतिव्रता नारी के आगे काहू की न बसाई ॥
पतिहि जिवायो निज सतित्व बल कालहुं दियो हराई ।
इन के यश की सुभग पताका तीन लोक फहराई ॥
थाप्यो थिर करि प्रेम पंथ जग निज आदर्श दिखाई ।
देव बधूगन आनन्दित ह्वै प्रेम बधाई गाई ॥१॥

(सावित्री वहां से चलती है और एक एक कर के वही दृश्य दिखलाई पड़ते हैं जो सावित्री को यमराज के साथ दिखलाई पड़े थे। अंत में बन का वह दृश्य दिखलाई पड़ता है जिस में सत्यवान का मृत शरीर पड़ा है । सावित्री उस में प्राण संस्थापन करती है और सत्यवान उठता है जैसे कोई सोता हुआ जागे)

सत्यवान ।—(अंगड़ाई ले कर) उह् ! कैसा भयानक दुःस्वप्न मैं ने देखा है । मानो कोई महा विकराल मूर्ति धारण किए महाकाल मेरे प्राण को ले कर चला है । रास्ते में कैसे कैसे घोर बन और भयानक नर्ककुंड मिले हैं जिस के स्मरण होने ही से रोमांच हो जाता है । फिर मानो वह महाकाल स्वर्ग के द्वार पर मुझे ले गया है, वहां मुझे वरण करने के लिये तीन अप्सरा खड़ी हैं, इतने में मानों किसी स्वर्गीय देवी ने मेरा प्राण दान महाकाल से ले लिया है, और वह देवी मानो हूबहू तुम्हीं हो यह उफ ! कलेजा कांपता है—हे जगदीश रक्षा करो ।

सावित्री ।—नाथ ! डरिये मत, अब कुछ चिन्ता नहीं यह सब सत्य था स्वप्न न था पर अब कुछ डर नहीं ।

सत्यवान।—ऐ! क्या यह सब सच था? क्या मुझे महाकाल के पास से तुम्हीं छुड़ा लाई? धन्य देवि धन्य! (घबड़ाहट नाट्य करता है) अह! बेतरह सिर घूमता है। कुछ समझ नहीं पड़ता जागता हूं या सोया।

(नारद मुनि बीन बजाते गाते आते हैं)

"बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम।
गोविन्द गोविन्द केशव केशव गोपाल गोपाल॥
माधव माधव, हरि हरि हरि बंशीधर बंशीधर श्याम।
नारायण वासुदेव नंदनंदन जगबंदन वृन्दावन चारु चंद्र
गरे गुंज दाम। हरिचंद जनरंजन सरन सुखद मधुर-
मूर्ति राधापति पूरण करन सतत भक्त काम॥१॥"

(सत्यवान, सावित्री प्रणाम करते हैं)

नारद।—मंगल मय भगवान श्रीकृष्णचंद्र सदा तुम लोगों का मंगल करैं। (सावित्री से) सावित्री! आज तू ने सतीकुल का मुख उज्वल किया, आज तुम ने सतीत्व की वह ध्वजा फहराई जो अनंत काल तक उड्डीयमान रहेगी। तुम्हारा यश देवांगनागन गाकर अपने को धन्य मानैंगी और तुम्हारी पुन्यकथा संसार को पवित्र करैगी।

(लवंगी, मधुकरी और सुरबाला का प्रवेश।)

सखीत्रय।—वाह सखी वाह! तुम में इतने गुण भरे हैं यह हम लोगों को तनिक भी विदित न था। धन्य तुम्हारा सतीत्व।

नारद।—(सत्यवान से) पुत्र! तुम्हारा धन्य भाग है जो तुम ने

ऐसी सती स्त्री पाई। (सावित्री का हाथ सत्यवान के हाथ में देते हैं) लो आज फिर मैं तुम्हें इस अमूल्य रत्न को सौंपता हूं इसे यत्न से रखना।

(तीनों सखी और अप्सरागण सावित्री सत्यवान को बीच में कर के नाचती और गाती हैं। रंगशाला में खूब प्रकाश हो जाता है)

जय जय सावित्री महरानी।
सती सिरोमनि रूपरासि करुनामय सब गुन खानी॥
प्रेममयी निज पति के पद में छाया सी लपटानी।
इन के जस की सुभग पताका तीन लोक फहरानी॥
अचल प्रताप सतीत्व धरम को थाप्यो जग सुखदानी।
सतीमंडली भूषण है है इन की प्रेम कहानी॥१॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है और यवनिका गिरती है)

प्रेमयोगिनी

तीसरा गर्भांक

(स्थान मुगलसराय का स्टेशन)।

(मिठाई वाले, खिलौने वाले, कुलीवाले, और चपरासी इधर उधर फिरते हैं।)

(सुधाकर, एक विदेशी पण्डित और दलाल बैठे हैं।)

दलाल।—(बैठ के पान लगाता है) या दाता राम ! कोई भागवान से भेंट कराना।

विदेशी पंडित।—(सुधाकर से) आप कौन हैं ? कहां से आते हैं ?

सुधाकर।—मैं ब्राह्मण हूं, काशी में रहता हूं और लाहोर से आता हूं।

विदेशी पंडित।—क्या आप का घर काशी ही जी में है ?

सुधाकर।—जी हां।

विदेशी पंडित।—भला काशी कैसा नगर है।

सुधाकर।—वाह ! आप काशी का वृत्तान्त अब तक नहीं जानते ? भला त्रैलोक्य में और दूसरा ऐसा कौन नगर है जिस को काशी की समता दी जाय ?

विदेशी पण्डित।—भला कुछ वहां की शोभा हम भी सुनैं।

सुधाकर।—सुनिये, काशी का नामान्तर वाराणसी है। जहां भगवती जन्हुनन्दिनी उत्तरवाहिनी हो कर धनुषाकार तीन ओर से ऐसी लपटी हैं, मानो इस को शिव की प्यारी जान कर गोद में ले कर आलिङ्गन कर रही हैं, और अपने पवित्र जल कण के स्पर्श से तापत्रय दूर करती हुई मनुष्य मात्र को पवित्र करती हैं। उसी गङ्गा के तट पर पुण्यात्माओं के बनाए बड़े बड़े घाटों के ऊपर दोमंजिले, चौमंजिले और सतमंजिले ऊंचे ऊंचे घर आकाश से बातैं कर रहे हैं। मानो हिमालय के श्वेत शृङ्ग सब गंगासेवन करने को एकत्र हुए हैं। उस में भी माधोराय के दोनों धरहरे तो ऐसे दूर से दिखाई देते हैं; मानों बाहर के पथिकों को काशी अपने दोनों हाथ ऊंचे कर के बुलाती है। सांझ सबेरे घाटों पर असंख्य

स्त्री पुरुष नहाते हुए ब्राह्मण लोग संध्या वा शास्त्रार्थ करते हुए, ऐसे दिखलाई देते हैं मानों कुबेरपुरी में, अलकानंदा में किन्नरगण और ऋषिगण अवगाहन करते हैं; और नगाड़ा नफीरी, शंख घण्टा, झांझ स्तव और जय का तुमुलशब्द ऐसा गूंजता है मानों पहाड़ों की तराई में मयूरों की प्रतिध्वनि हो रही है; उस में भी जब कभी दूर से सांझ को या बड़े सबेरे नौबत की सुहानी धुन कान में आती है तो कुछ ऐसी भली मालूम पड़ती है कि एक प्रकार की झपकी सी आने लगती है। और घाटों पर सबेरे धूप की झलक और सांझ को जल में घाटों की परछाहीं की शोभा भी देखते ही बन जाती है।

जहां ब्रज ललना ललित चरण युगल पूर्ण परब्रह्म सच्चिदा-नन्द घन बासुदेव आप ही श्री गोपाल लाल रूप धारण कर के प्रेमियों को दर्शन मात्र से कृत कृत्य करते हैं और भी बिन्दुमाधवादि अनेक रूप से अपने नाम धाम के स्मरण, दर्शन, चिन्तनादि से पतितों को पावन करते हुए बिराज-मान हैं।

जिन मन्दिरों में प्रातःकाल सन्ध्या समय दर्शकों की भीड़ लगी हुई है, कहीं कथा, कहीं हरिकीर्त्तन, कहीं नाम कीर्त्तन, कहीं ललित, कहीं नाटक, कहीं भगवत लीला अनु-करणइत्यादि अनेक कौतुकों के मिस से भी भगवान के नाम गुण में लोग मग्न हो रहे हैं।

जहां तारकेश्वर विश्वेश्वरादि नाम धारी भगवान भवानी-

पति तारकब्रह्म का उपदेश कर के तनुत्याग मात्र से ज्ञानियों को भी दुर्लभ अपुनर्भव परम मोक्षपद—मनुष्य, पशु, कीट, पतंगादि आपामर जीव मात्र को दे कर उसी क्षण अनेक कल्प सञ्चित महापाप पुञ्ज भस्म कर देते हैं।

जहां अंधे लंगड़े, लूले, बहरे, मूर्ख और निरुद्यम आलसी जीवों को भी भगवती अन्नपूर्णा अन्न वस्त्रादि दे कर माता की भांति पालन करती हैं।

जहां अब तक देव, दानव, गंधर्व्व, सिद्ध, चारण, विद्याधर, देवर्षि, राजर्षि गण और सब उत्तम उत्तम तीर्थ—कोई मूर्त्तिमान, कोई छिप कर और कोई रूपान्तर कर के नित्य निवास करते हैं।

जहां मूर्त्तिमान सदाशिव प्रसन्न वदन आशुतोष सकल सद्गुणैक रत्नाकर, विनयैकनिकेतन, निखिल विद्याविशारद, प्रशान्तहृदय, गुणिजनसमाश्रय, धार्म्मिकप्रवर, काशीनरेश महाराजाधिराज श्रीमदीश्वरीप्रसाद नारायण सिंह बहादुर और उन के कुमारोपम कुमार श्री प्रभु नारायण सिंह बहादुर दान धर्म्मसभा रामलीलादि के मिस से धर्म्मोन्नति करते हुए और असत् कर्म्म नीहार को सूर्य्य की भांति नाशते हुए पुत्र की तरह अपनी प्रजा का पालन करते हैं।

जहां श्रीमती चक्रवर्त्तिनिचयपूजितपादपीठा श्रीमती महाराज्ञी विक्टोरिया के शासनानुवर्त्ती अनेक कमिश्नर, जज, कलेक्टरादि अपने अपने काम में सावधान प्रजा को हाथ पर

लिए रहते हैं और प्रजा उन के त्रिकट दंड के सर्वदा जागने के भरोसे नित्य सुख से सोती हैं।

जहां राजा शंभूनारायण सिंह, बाबू फतहनारायण सिंह, बाबू गुरुदास, बाबू माधव दास, विश्वेश्वरदास, राय नारायण दास इत्यादि बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिक तथा श्री बापूदेव शास्त्री, श्रीबाल शास्त्री से प्रसिद्ध पण्डित, श्रीराजा शिवप्रसाद, सैयद अहमद खां बहादुर ऐसे योग्य पुरुष, मूलचन्द्र मिस्तरी से शिल्पविद्या निपुण, वाजपेयी जी से तन्त्रीकार, श्री पंडित बेचन जी, शीतलजी, श्रीताराचरण से संस्कृत के सेवक और हरिश्चन्द्र से भाषा के कवि, बाबू अमृतलाल, मुन्शी गन्नूलाल, श्यामसुन्दरलाल से शास्त्रव्यसनी और एकान्तसेवी, श्रीस्वामी विश्वरूपानन्द से यति, श्रीस्वामी विशुद्धानन्द से धर्म्मोपदेष्टा, दातृगणैकाग्रगण्य श्रीमहाराजाधिराज विजयनगराधिपति से विदेशी सर्वदा निवास कर के नगर की शोभा दिन दूनी रात चौगुनी करते रहते हैं।

जहां क्वीन्स कालिज (जिसके भीतर बाहर चारो ओर श्लोक और दोहे खुदे हैं) जयनारायन कालिज से बड़े, बंगाली टोला और लंडन मिशन से मध्यम, तथा हरिश्चन्द्र स्कूल से छोटे अनेक विद्यामन्दिर, जिन में संस्कृत, अंगरेजी, हिन्दी, फारसी, बंगला, महाराष्ट्री की शिक्षा पा कर प्रति वर्ष अनेक विद्यार्थी विद्योत्तीर्ण हो कर प्रतिष्ठा लाभ करते हैं; इन के अतिरिक्त पण्डितों के घर में तथा हिन्दी फारसी पाठकों की

निज शाला में अलग ही लोग शिक्षा पाते हैं, और राय संकटाप्रसाद के परिश्रमोत्पन्न पबलिकलाइब्रेरी, मुंशी शीतल-प्रसाद का संस्कृत भवन, हरिश्चन्द्र का सरस्वती भंडार इत्यादि अनेक पुस्तकमन्दिर हैं, जिन में साधारण लोग सब विद्या की पुस्तकें देखने पाते हैं।

जहां मानमन्दिर ऐसे यन्त्रभवन, सारनाथ की धमेख से प्राचीनावशेष चिन्ह, विश्वनाथ के मन्दिर का वृषभ और स्वर्णशिखर, राजा चेतसिंह के गङ्गा पार के मन्दिर, कश्मीरी मलकी हवेली और क्वीन्स कालिज की शिल्पविद्या और माधोराय के धरहरे की उंचाई देख कर विदेशी जन सर्वदा चकित रहते हैं।

जहां महाराज विजयनगर के तथा सरकार के स्थापित स्त्री विद्यामन्दिर, औषधालय, अन्धभवन, उन्मत्तागार, इत्यादिक लोकद्वय साधक अनेक कीर्त्तिकर कार्य्य, वैसे ही चूड़वाले इत्यादि महाजनों का सदावर्त्त और श्रीमहाराजाधिराज सेंधिया आदि के अटल सत्र से ऐसे अनेक दीनों के आश्रयभूत स्थान हैं जिन में उन को अनायास ही भोजनाच्छादन मिलता है।

जहां अहोबल शास्त्री, जगन्नाथ शास्त्री, पण्डित काकाराम, पंडित मायादत्त, पंडित हीरानन्द चौबे, काशीनाथ शास्त्री, पण्डित भवदेव, पण्डित सुखलाल ऐसे धुरन्धर पंडित और भी जिनका नाम इस समय मुझे स्मरण नहीं आता, अनेक

ऐसे ऐसे हुए हैं जिन की विद्या मानो मंडन मिश्र की परम्परा पूरी करती थी।

जहां विदेशी अनेक तत्ववेत्ता धार्म्मिक धनीजन घर बार कुटुम्ब देश विदेश छोड़ कर निवास करते हुए तत्वचिन्ता में मग्न सुख दुःख भुलाए संसार को यथारूप में देखते सुख से निवास करते हैं।

जहां पण्डित लोग विद्यार्थियों को ऋक्, यजुः, साम, अथर्व, महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण, स्मृति, न्याय, व्याकरण, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, शैव, वैष्णव, अलङ्कार, साहित्य, ज्योतिष इत्यादि शास्त्र सहज में पढ़ाते हुए मूर्तिमान गुरु और व्यास से शोभित काशी की विद्यापीठता सत्य करते हैं।

जहां भिन्न देश निवासी आस्तिक विद्यार्थीगण परस्पर देवमन्दिरों में, घाटों पर, अध्यापकों के घर में, पण्डित सभाओं में वा मार्ग में मिल कर शास्त्रार्थ करते हुए अनर्गल धारा प्रवाह संस्कृत भाषण में सुनने वालों का चित्त हरण करते हैं।

जहां स्वर लय छन्द मात्रा, हस्तकम्पादि से शुद्ध वेदपाठ की ध्वनि से जो मार्ग में चलते वा घर बैठे सुन पड़ती है, तपोवन की शोभा का अनुभव होता है।

जहां द्रविड़, मगध, कान्यकुब्ज, महाराष्ट्र, बङ्गाल, पञ्जाब, गुजरात इत्यादि अनेक देश के लोग परस्पर मिले

हुए अपना अपना काम करते दिखाते हैं और वे एक एक जाति के लोग जिन मुहल्लों में बसे हैं वहां जाने से ऐसा ज्ञात होता है मानों उसी देश में आए हैं। जैसा बंगाली टोले में ढाके का, लाहौरी टोले में अमृतसर का और ब्रह्माघाट में पूने का भ्रम होता है।

जहां निराहार, पयाहार, यताहार, भिक्षाहार, रक्ताम्बर, श्वेताम्बर, नीलाम्बर, चर्म्माम्बर, दिगम्बर, दण्डी, संन्यासी, ब्रह्मचारी, योगी, यती, सेवड़ा, फकीर, सुथरेसाईं, कनफटे, ऊर्द्धबाहु, गिरी, पुरी, भारती, बन, पर्वत, सरस्वती, किनागमी, कबीरी, दादूपन्थी, नान्हकसाही, उदासी, रामानन्दी, कौल, अघोरी, शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर इत्यादि हिन्दू और ऐसे ही अनेक भांति के मुसल्मान फक़ीर नित्य इधर से उधर भिक्षा उपार्जन करते फिरते हैं और इसी भांति सब अन्धे, लंगड़े, लूले, दीन, पंगु, असमर्थ लोग भी भिक्षा पाते हैं, यहां तक कि आधी काशी केवल दाता लोगों के भरोसे नित्य अन्न खाती है।

जहां हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा, अन्न, घी, तेल, अतर, फुलेल, पुस्तक, खिलौने इत्यादि की दूकानों पर हजारों लोग काम करते हुए मोल लेते बेंचते दलाली करते दिखाई पड़ते हैं।

जहां की बनी कमख़ाब, बाफता, हमरू, समरू, गुलबदन, पोत, बनारसी साड़ी, दुपट्टे, पीताम्बर, उपरने, चोल-

खण्ड, गोटा, पट्टा, इत्यादि अनेक उत्तम वस्तु देश विदेश जाती हैं और जहां की मिठाई, खिलौने, चित्र, टिकुली, बीड़ा इत्यादि और भी अनेक सामग्री ऐसी उत्तम होती हैं कि दूसरे नगर में कदापि स्वप्न में भी नहीं बन सकती।

जहां प्रसादी तुलसी माला फूल से पवित्र और स्नायी स्त्री पुरुषों के अंग के विविध चंदन, कस्तूरी, अतर इत्यादि सुगन्धि द्रव्य के मादक आमोद संयुक्त परम शीतल तापत्रय विमोचक गंगा जी के कण, स्पर्श मात्र से अनेक लौकिक अलौकिक ताप से तापित मनुष्यों का चित्त सर्वदा शीतल करते हैं।

जहां अनेक रंगों के कपड़े पहने सोरहो सिंगार, बत्तीसो आभरण सजे, पान खाए, मिस्सी की धड़ी जमाए, जोबन मदमाती झमझमाती हुई बारबिलासिनी देवदर्शन, वैद्य, ज्योतिषी, गुणीगृहगमन, जारमिलन, गानश्रावन, उपबन भ्रमण इत्यादि अनेक बहानों से राजपथ में इधर उधर झूमती घूमती नैनों के पटे फेरतीं विचारे दीन पुरुषों को ठगती फिरती है और कहां तक कहैं काशी काशी ही है। काशी सी नगरी त्रैलोक्य में दूसरी नहीं है। आप देखियेगा तभी जानियेगा, बहुत कहना व्यर्थ है।

विदेशी पंडित।—वाह वाह! आपके वर्णन से मेरे चित्त का काशीदर्शन का उत्साह चतुर्गुण हो गया। यों तो मैं सीधा कलकत्ते जाता, पर अब काशी बिना देखे कहीं न जाऊंगा।

आप ने तो ऐसा वर्णन किया मानो चित्र सामने खड़ा कर दिया। कहिए वहां और कौन गुणी और दाता लोग हैं जिनसे मिलूं।

सुधाकर—मैं तो पूर्व ही कह चुका हूं कि काशी गुणी और धनियों की खान है, यद्यपि यहां के बड़े बड़े पंडित जो स्वर्गवासी हुए उन से अब दर्शन होने कठिन हैं, तथापि अब भी जो लोग हैं दर्शनीय और स्मरणीय हैं। फिर इन व्यक्तियों के दर्शन भी दुर्लभ हो जायंगे और यहां के दाताओं का तो कुछ पूछना ही नहीं। चूड़की कोठीवालों ने पंडित काकाराम जी के ऋण के हेतु एक साथ बीस सहस्र मुद्रा दीं। राजा पटनीमल के बांधे धर्म्मचिन्ह कर्मनाशा का पुल और अनेक धर्म्मशाला, कूएं, तालाव, पुल इत्यादि भारतवर्ष के प्रायः सब तीर्थों पर विद्यमान हैं। साह गोपालदास के भाई साह भवानी दास की भी ऐसी ही उज्ज्वल कीर्त्ति है और भी दीवान केवल कृष्ण चम्पत राय अमीन इत्यादि बड़े बड़े दानी इसी सौ वर्ष के भीतर हुए हैं। बाबू राजेन्द्र मित्र की बांधी देवी पूजा, बाबू गुरुदास मित्र के यहां अब भी बड़े धूम से प्रति वर्ष होती है। अभी राजा देव नारायण सिह ही ऐसे गुणज्ञ हो गए हैं कि उन के यहां से कोई खाली हाथ नहीं फिरा। अब भी बाबू हरिश्चन्द्र इत्यादि गुणग्राहक इस नगर की शोभा की भांति विद्यमान हैं। अभी लाला बिहारी लाल और मुन्शी रामप्रताप जी ने कायस्थ जाति का उद्धार कर के कैसा उत्तम कार्य्य किया, आप मेरे

मित्र रामचंद्र ही को देखिएगा उसने बाल्यावस्था ही में लाखावधि मुद्रा व्यय कर दी है। अभी बाबू हरखचन्द्र मरे हैं जो एक गोदान नित्य कर के जलपान करते थे। कोई भी फकीर यहां से खाली नहीं गया। दस पन्द्रह रामलीला इन्हीं काशीवालों के व्यय से प्रति वर्ष होती है और भी हजारों पुण्यकार्य यहां हुआ ही करते हैं। आप को सब से मिलाऊंगा आप काशी चलैं तो सही।

विदेशी पंडित।—लाहोर क्यों गये थे ?

सुधाकर।—(लम्बी सांस ले कर) कुछ न पूछिये यों ही सैर को गया था।

दलाल।—(सुधाकर से) का गुरु। कुछ पण्डित जी से बोहनी बाड़े का तार होय तो हम भी साथै चलूचैं।

सुधाकर।—तार तो पण्डित बाड़ा है कुछ विशेष नहीं जान पड़ता।

दलाल।—तब भी फोंक सऊड़े का मालवाड़ा कहां तक न लेऊ चियै।

सुधाकर।—अब जो पलते पलते पलै।

विदेशी पण्डित।—यह इन्हों ने किस भाषा में बात की ?

सुधाकर।—यह काशी ही की बोली है, ये दलाल हैं, सो पूछते थे कि पण्डित जी कहां उतरैंगे।

विदेशी पण्डित।—तो हम तो अपने एक सम्बन्धी के यहां नीलकण्ठ पर उतरैंगे।

सुधाकर।—ठीक है, पर मैं आप को अपने घर अवश्य ले जाऊंगा।

विदेशी पण्डित।—हां हां, इस में कोई सन्देह है? मैं अवश्य चलूंगा।

(स्टेशन का घंटा बजता है और जवनिका गिरती है।)
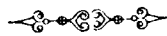
कर्पूर-मंजरी

पहिला अंक।

स्थान राजभवन।

(राजा, रानी, विदूषक और दरबारी लोग दिखाई पड़ते हैं)

राजा।—प्यारी, तुम्हें बसन्त के आने की बधाई है, देखो अब पान बहुत नहीं खाया जाता, न सिर में तेल देकर चोटी कस के गूंथी जाती है, वैसे ही चोली भी कस के नहीं बांधी जाती, न केसर का तिलक दिया जा सकता है, इसी से प्रगट है कि बसन्त ने अपने बल से सरदी को अब जीत लिया।

रानी।—महाराज! आप को भी बधाई है, देखिए, कामी जन चन्दन लगाने और फूलों की माला पहिरने लगे, और दोहर पाएंते रक्खी रहती है, तौ भी अब ओढ़ने की नौबत नहीं आती।

(नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं।)

जै पूरब दिसि कामिनी कंत।
चंपावति नगरी सुख समंत॥

खेलत जीत्यौ जिन राढ़ देश।
मोहत अनङ्ग लखि जासु भेस॥
क्रीड़ा मृग जाको सारदूल।
तन बरन कान्ति मनु हेम फूल॥
सब अंग मनोहर महाराज।
यह सुखद होइ रितुराज साज॥

मन्द मन्द लै सिरिस सुगन्धहि सरस पवन यह आवै।
करि संचार मलय पर्वत पैं बिरहिन ताप बढ़ावै॥
कामिनि जन के बसन उड़ावत काम धुजा फहरावै।
जीवन प्रान दान सों बितरत वायु सबन मन भावै॥१॥
देखहु लहि रितुराजहि उपबन फूली चारु चमेली।
लपट रहीं सहकारन सों बहु मधुर माधवी बेली॥
फूके बर बसन्त बन बन मैं कहु मालती नवेली।
तापैं मदमाते से मधुकर गूंजत मधुरस रेली॥२॥

राजा।—प्यारी, हम लोग तो आपस में बसन्त की बधाई एक दूसरे को देते ही थे अब इन दोनों कांचनचन्द्र और रत्नचन्द्र बन्दियों ने हम दोनों को बधाई दी। अब तुम इस वसन्तोत्सव की ओर दृष्टि करो। देखो कोइल कैसे पंचम सुर में बोलती है, हवा के झोंके से लता कैसी नाच रही हैं, तरुन स्त्रियों के जी में कैसा इस का उत्साह छा रहा है और सारी पृथ्वी इस बसन्त की वायु से कैसी सुहानी हो रही है!

रानी।—महाराज! बन्दी ने जैसा कहा है हवा वैसी ही बह रही

है, देखिए यह पवन लङ्का के कनगूरों की पङ्गति में यद्यपि कैसा चञ्चल है पर अगस्त मुनि के आश्रम में उन के भय से धीरा चलता है, इस के झोंके से चन्दन कपूर कङ्कोल और केले के पत्ते कैसे झोंका खा रहे हैं; जङ्गलों में जहां तहां सांप नाचते हैं और ताम्रपर्णी नदी की लहरों को यह स्पर्श करता है तो उन्हें दूना कर देता है।

देखिये, कोयल मानों कामदेव की आज्ञा से इस चैत के त्यौहार में पुकार रही है कि तरुणिओ झूठा मान छोड़ो, अपने प्यारे को प्यार की चितवन से देखो, और दौड़ दौड़ के प्रीतम को गले लगाओ यह चार दिन की जवानी तो बहती नदी है, फिर यह दिन कहां और यह समय कहां ?

विदूषक।—अरे कोई मुझे भी पूछो, मैं भी बड़ा पण्डित हूं, जब मैंने अपना मकान बनाया था तो हजारों गदहों पर लाद लाद कर पोथियां नेव में भरवाई गई थीं और हमारे ससुर जनम भर हमारे यहां पोथी ही ढोते ढोते मरे, काले अच्छर दूसरों को तो कामधेनु हैं पर हम को भैंस हैं।

विचक्षणा।—इसी से तो तुम्हारा नाम लबार पांड़े है।

वि०।—(क्रोध से) हत तेरी की, दाई माई कुटनी लुच्ची मूर्ख! अब हम ऐसे हो गए कि मजदूरिनें भी हमैं हंसैं!

विच०।—तुम्हारी माई कुटनी है तभी तुम ऐसे सपूत हुए, तुम से तो वे भाट अच्छे जो अभी गीत गा गए हैं, तुम्हें इतनी

भी समझ नहीं है कि कुछ बनाओ और गाओ, यह सेखी और तीन काने।

विदू० ।—अब हम इन के सामने गावेंगे, इन का मुंह है कि हमारी कविता सुनें, हां अगर हमारे दोस्त महाराज कुछ कहें तो अलबत्ते गाऊं।

राजा ।—हां, हां, मित्र पढ़ो, हम सुनते हैं।

विदू० ।—(लाठी पर तमूरा बजा कर गाता है)।

आयो २ बसन्त आयो बसन्त। बन में महुआ टेसू फुलन्त॥
नाचत है मोर अनेक भांति, मनु भैंसा का पड़वा फूलफालि॥
बेला फूले बन बीच बीच, मानो दही जमायो सींच सींच।
बहि चलत भयो है मन्द पौन, मनु गदहा को छान्यो पैर।

तारीफ और वाह वाह करते जाइए नहीं न गाया जायगा, देखिए संगीत साहित्य दोनों एक ही साथ करना मेरा ही काम है।

(गाता है)

गेंदा फूले जैसे पकौरि। लड्डू से फले फल बौरि बौरि॥
खेतन में फूले भातदाल। घर में फूले हम कुल के पाल॥
आयो आयो बसन्त आयो आयो बसन्त॥
हम बसन्त, राजा बसन्त, रानी बसन्त, यह दाई भी बसन्त॥

(सब लोग हंसते हैं)

राजा ।—भला इन की कविता तो हो चुकी अब विचक्षणे! तुम भी कुछ पढ़ो।

विदू० ।—हां हां, हमारी बोली पर हंसती है तो यह पढ़ै बड़ी बोलने वाली, इस को सिवाय टें टें करने के और आता क्या है, क्या ऐसी बदमाश स्त्री राजा के महल में रहने के योग्य है ? यह रात दिन महारानी का गहना चुरा कर अपने मित्रों को दिया करती है और उस पर हमारे काव्य पर हंसती है, सच है बन्दर आदी का स्वाद क्या जाने, हमारे काव्य पर रीझनेवाले महाराज हैं, तू क्या रीझेगी, अब देखते न हैं तू कैसा काव्य पढ़ती है ।

रानी ।—हां हां, सखी विचक्षणे ! हम लोगों के आगे तो तू ने अपना बनाया काव्य कई बेर पढ़ा है, आज महाराज के सामने भी तो पढ़, क्योंकि विद्या वही जिस की सभा में परीक्षा ली जाय और सोना वही जो कसौटी पर चढ़े और शस्त्र वही जो मैदान में निकले ।

विचक्षणा ।—महारानी की जो आज्ञा (पढ़ती है)

फूलैंगे पलास बन आगि सी लगाई कूर,
कोकिल कुहुकि कल सबद सुनावैगो ।
त्यौंही सखी लोक सबै गावैगो धमार धीर-,
हरन अबीर बीर सब ही उड़ावैगो ॥
सावधान होहुरे वियोगिनी सम्हारि तन,
अतन तनकही मैं तपान तें तावैगो ।
धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम,
कहर मचावत बसन्त अब आवैगो ॥

राजा ।—वाह वाह ! सचमुच विचक्षणा बड़ी ही चतुर है और कवितासमुद्र के पार हो गई है, यह तो सब कवियों की राजा होने योग्य है ।

रानी ।—(हंस कर) इस में कुछ सन्देह है हमारी सखी सब कवियों की सिरताज तो हुई ।

विदू० ।—(क्रोध से) तो महारानी स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं कि यह दासी विचक्षणा बहुत अच्छी है और कपिञ्जल ब्राह्मण बहुत निकम्मा है ।

विचक्षणा ।—हैं हैं ! एकबारगी इतने लाल पीले हो गये, जो जैसा है उस का गुण तो उस के काव्य ही से प्रगट हो गया, तुम्हारे काव्य की उपमा तो ठीक ऐसी है जैसे लम्बस्तनी के गले में मोती की माला, बड़े पेटवाली को कामदार कुरती, सिर मुण्डी को फूलों की चोटी और कानी को काजल ।

विदू० ।—सच्च है, और तुम्हारी कविता ऐसी है सफेद फर्श पर गोबर का चोंथ, सोने की सिकड़ी में लोहे की घण्टी और दरियाई की अंगिया में मूंज की बखिया ।

विचक्षणा ।—खफा मत हो, अपनी ओर देखो, आप आप ही हो, एक अक्षर नहीं जानते तिस पर भी हीरा तौलते हो, और हम सब पढ़ लिख कर भी अब तक कपास ही तौलती हैं ।

विदू० ।—बकबक किये ही जायगी तो तेरा दहिना और बायां युधिष्ठिर का बड़ा भाई उखाड़ लेंगे ।

विचक्षणा ।—और तुम भी जो टेंटें किये ही जाओगे तो तुम्हारी

भी स्वर्ग काट के एक ओर के पोंछ की अनुप्रास मूड़ देंगे और लिखने की सामग्री मुंह में पोत कर पान के मसाले का टीका लगा देंगे।

राजा।—मित्र ! इस के मुंह मत लगो, यह कविताई में बड़ी पक्की है।

विदूषक।—(क्रोध से) तो साफ साफ क्यों नहीं कहते कि हरिश्चन्द्र और पद्माकर इस के आगे कुछ नहीं हैं ?

(क्रोध कर के इधर उधर घूमता है)

विचक्षणा।—चल, उसी खूंटी पर लटक जिस पर मेरा लहंगा रक्खा है।

विदूषक।—(क्रोध कर और सिर हिला के) और तू भी वहां जा जहां मेरी बुड्ढी मां के दांत गए। छिः ! हम भी बड़े बड़े दरबार से निकाले गए पर ऐसी अंधेर नगरी और चौपट राजा कहीं नहीं। यहां चरणामृत और शराब एक ही बरतन में भरे जाते हैं।

विचक्षणा।—भगवान करे इस दरबार से तुझे वह मिले जो महादेव जी के सिर पर हैं और तुझे वह शास्त्र पढ़ाया जाय जो कांटों को मर्दन करता है।

विदूषक।—लौंडिया फिर टें टें किये ही जाती है, खजाना लूट लूट के खाली कर दिया, इस पर भी मोढ़े पर बैठने वाली और गलियों में मारी मारी फिरने वाली, हम कुलीन ब्राह्मणों के मुंह लगती है। जा तुझ को सर्वदा वही फांकना पड़े जो

महादेव जी अंग में पोतते हैं और तेरे हाथ सदा वही लगे जिस में धरम बंधता है ।

विचक्षणा ।—तेरे इस बोलने पर तो ऐसा जी चाहता है कि पान के बदले चरनदास जी से तेरा मुंह लाल कर दूं । फिट ।

विदू० ।—(बड़े क्रोध से ऊंचे स्वर मे) ऐसे दरबार को दूर ही से नमस्कार करना चाहिए जहां लौंडियां पंडितों के मुंह आवैं । यदि हमें इसी उचक्की की बात सहनी हों तो हम वसुंधरा नाम की अपनी ब्राह्मणी ही की न चरनसेवा करें जो अच्छा २ और गर्म २ खाने को खिलावे (ऐसा कहता हुआ क्रोध से चला जाता है) (सब लोग हंसते है)

रानी ।—महाराज कपिजल बिना ऐसी सभा हो गई जैसे बिना काजल का शृङ्गार ।

(नेपथ्य में)

नहीं २ हम नहीं आवैंगे । विचक्षणा को खसम और राजा को मुसाहब कोई दूसरा खोज लो या आज से हमारा काम वही गलितयौवना और चिपटे नाक कान वाली करेगी ।

विचक्षणा ।—महारानी ! आप के आग्रह से यह कपिजल और भी अकड़ा जाता है, जैसे सन की गांठ भिगाने से उलटी कड़ी होती है, उस को जाने दीजिए इधर देखिए यह गवांरिनों के गीतों और चांचर से मोहित सूर्य्य यद्यपि धीरे चलता है तौ भी अब कितना पास आ गया है ।

(विदूषक घबड़ाया हुआ आता है)

विदूषक।—आसन! आसन!!

राजा।—क्यों?

विदूषक।—भैरवानन्द जी आते हैं।

राजा।—क्या वही भैरवानन्द जो आज कल के बड़े प्रसिद्ध सिद्ध हैं?

विदूषक।—हां, हां।

(भैरवानन्द आते हैं)

भै० न०।—जंत्र न मंत्र न ज्ञान न ध्यान न जोग न भोग केवल गुरु का प्रसाद, पीने को मदिरा औ खाने को मांस, सोने को स्त्री मसान का बास, लाख लाख दासी सब कड़े कड़े अङ्ग, सेवा में हाजिर रहें पीए मद्य भंग, भिच्छा का भोजन औ चमड़े का बिछौना, लङ्का पलङ्का सातो दीप नवो खण्ड गौना, ब्रह्मा विष्णु महेश पीर पैगम्बर जोगी जती सती बीर महाबीर हनूमान रावन महिरावन अकाश पताल जहां बांधूं तहां रहे जो जो कहूं सो सो करे, मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच, दोहाई पशुपति नाथ की, दोहाई कामाक्षा की, दोहाई गोरखनाथ की।

राजा।—महाराज! प्रणाम।

भै० न०।—राजा! विष्णु और ब्रह्मा तप करते करते थक गए पर सिद्धि मद्य और स्त्री ही में है यह महादेव जी ही ने जाना है सो वह कापालिकों के परम कुलगुरु शिव तेरा कल्याण करें।

राजा।—महाराज, आसन पर विराजिए।

भै० न०।—हम रमते लोगों को बैठने से क्या काम, तब भी तेरी खातिर से बैठते हैं। (बैठता है)—बोल, क्या दिखावें ?

राजा।—महाराज ! कुछ आश्चर्य दिखाइए।

भैरवानन्द।—क्या आश्चर्य दिखावें ?

सूरज बांधू चन्दर बांधू बांधू अगिन पताल।
सेस समुन्दर इन्दर बांधू औ बांधू जम काल॥
जच्छ रच्छ देवन की कन्या बल से लाऊं बांध।
राजा इन्दर का राज डोलाऊं तो मैं सच्चा साध॥
नहीं तो जोगड़ा। और क्या।

राजा।—(विदूषक के कान में) मित्र, तुम ने कहीं कोई बड़ी सुन्दर स्त्री देखी हो तो बुलवावें ?

विदूषक।—(स्मरण करके) हां ! दक्षिण देश में विदर्भ नामक नगर है वहां मैं ने एक लड़की बड़ी सुन्दर देखी थी, वही बुलाई जाय।

भैरवानन्द।—बोल ! बुलाई जाय ?

राजा।—हां ! महाराज। पूर्णमासी का चन्द्रमा पृथ्वी पर उतारा जाय।

भैरवानन्द।—(ध्यान करता है)

(परदे के भीतर से खिंची हुई की भांति एक सुन्दर स्त्री आती है और सब लोग बड़ा ही आश्चर्य करते हैं)

राजा।—(आश्चर्य से) अहाहा ! जैसे रूप का खजाना खुल

गया, नेत्र कृतार्थ हो गए, यह रूप, यह जोबन, यह चितवन, यह भोलापन, कुछ कहा नहीं जाता, मालूम होता है कि यह नहा कर बाल सुखा रही थी उसी समय पकड़ आई है, अहा ! धन्य है इस का रूप !!! इस की चितवन कलेजे में से चित्त को जोराजोरी निकाले लेती है, इस की सहज शोभा इस समय कैसी भली मालूम पड़ती है, अहा ! इस के कपड़े मे जो पानी की बूंदें टपकती हैं वह ऐसी मालूम होती हैं मानों भावी वियोग के भय से वस्त्र रोते हैं, काजल आंखों से धो जाने से नेत्र कैसे सुहाने हो रहे हैं, और बहुत देर तक पानी में रहने से कुछ लाल भी हो गए हैं, बाल हाथों में लिए हैं उसमे पानी की बूंदें ऐसी टपकती हैं मानो चन्द्रमा का अमृत पी जाने से दो कमलों ने नागिनी को ऐसा दबाया है कि उन के पोंछ से अमृत बहा जाता है, भींगे वस्त्र से छोटे छोटे इस के कठोर कुच अपनी उंचाई और श्यामताई से यद्यपि प्रत्यक्ष हो रहे हैं तौ भी यह उन्हें बांह से छिपाना चाहती है, और वैसेही गोरी गोरी जांघें इस की चिपके हुए भींगे वस्त्र से यद्यपि चमकती हैं तौ भी यह उन को दबाए देती है, वरञ्च इसी अंग उघरने से यह लजाकर सकपकानी सी भी हो रही है, और योगबल से खिंच आने से जो कुछ डर गई है, इस से और भी चौकन्नी हो होकर भूले हुए मृग-छौने की भांति अपने चञ्चल नेत्र नचाती है।

स्त्री।—(चकपकानी सी हो कर एक एक को देखती है) (आप ही

आप) यह कौन पुरुष है जिस का देह गम्भीर और मधुर छबि का मानों पुंज है, निश्चय यह कोई महाराज है, और यह भी महादेव के अङ्ग में पार्वती की भांति निश्चय इस की प्यारी महारानी हैं, और यह कोई बड़ा जोगी हैं, हो न हो यह सब इसी का खेल है (विचार करके) यद्यपि यह एक स्त्री के बगल में बैठा है तौ भी मुझे ऐसी गहरी और तीखी दृष्टि से क्यों देखता है (राजा की ओर देखती है ।)

राजा ।—(विदूषक से कान में) मित्र ! अभी जो इस ने अपने कानों को छूने वाली चञ्चल चितवन से मुझे देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि मानों मुझ पर किसी ने अमृत की पिचकारी चलाई वा कपूर बरसाया वा चांदनी से एक साथ नहला दिया या मोती का बुक्का छिड़क दिया ।

विदूषक ।—सच है, अहाहा ! वाह रे इस के रूप की छबि ! इस की कमर एक लड़का भी अपनी मुट्ठी में पकड़ सकता है, और नेत्र की चञ्चलता देख कर पुरुष क्या स्त्री भी मोह जाती हैं, देखो यद्यपि इस ने स्नान के हेतु गहना उतार दिया है तो भी कैसी सुहानी दिखाई पड़ती है । सच है, सुन्दर रूप को तो गहना ऐसा है जैसा निर्मल जल को काई ।

राजा ।—ठीक है, इस की छबि तो आप ही कुन्दन की निन्दा करती है तो गहने से इसे क्या, इस का दुबला शरीर काम की परतंचा उतारी हुई कमान है, और इस के गोरे गोरे गोल गालों मे कनफूल की परछाहीं ऐसी दिखाती है जैसे चांदी की

थाली में भरे हुए मजीठ के रङ्ग में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब, इस के कर्णावलम्बी नेत्र मेरे मन को अपनी ओर खींचे ही लेते हैं।

विदूषक।—(हंस कर) जाना जाना! बहुत बड़ाई मत करो।

राजा।—(हस कर) मित्र! हम कुछ झूठ नहीं कहते, तुम्हीं देखो, यह बिना आभूषण भी अपने गुणों से भूषित है। जो स्त्रियां ऐसी सुन्दर हैं उन पर पुरुष को आसक्त कराने में कामदेव को अपना धनुष नहीं चढ़ाना पड़ता, देखो इस की चितवन में मिठास के साथ स्नेह भी झलकता है, इस के कान में नीले कमल के फूल झूलते हुए ऐसे सुहाते हैं मानों चन्द्रमा में से दोनों ओर से कलंक निकला जाता है।

रानी।—अजी कपिंजल! इन से पूछो तो यह कौन हैं या मैं ही पूछती हूं। (स्त्री से) सुन्दरी, यहां आओ, मेरे पास बैठो और कहो तुम कौन हो?

राजा।—आसन दो।

विदूषक।—यह मैं ने अपना दुपट्टा बिछा दिया है, बिराजो (स्त्री बैठती है)।

विदूषक।—हां, अब कहो।

स्त्री।—कुन्तल देश में जो विदर्भनगर है, वहां की प्रजा का बल्लभ, बल्लभराज नामक राजा है।

रानी।—(आप ही आप) वह तो मेरा मौसा है।

स्त्री।—उस की रानी का नाम शशिप्रभा है।

रानी।--(आप ही आप) और यही तो मेरी मौसी का भी नाम है।

स्त्री।—(आंख नीची कर के) मैं उन्हीं की बेटी हूं।

रानी।--(आप ही आप) सच है, बिना शशिप्रभा के और ऐसी सुन्दर लड़की किस की होगी। सीप बिना मोती और कहां हो (प्रगट) तो क्या कर्पूरमंजरी तू ही है ?

स्त्री।—(लाज से सिर झुका कर चुप रह जाती है)।

रानी।—तो आओ आओ बहिन मिल तो लें।

(कर्पूरमंजरी को गले लगा कर मिलती है)

कर्पूरमंजरी।—बहिन, यह आज हमारी पहली भेंट है।

रानी।—भैरवानन्द जी की कृपा से कर्पूरमंजरी का देखना हमैं बड़ा ही अलभ्य लाभ हुआ। अब यह पन्द्रह दिन तक यहीं रहे, फिर आप जोगबल से पहुंचा दीजिएगा।

भैरवानन्द—महारानी की जो इच्छा।

विदूषक।—मित्र! अब हम तुम दो ही मनुष्य यहां बेगाने निकले, क्योंकि ये दोनों तो बहिन ही हैं और भैरवानन्दजी इन दोनों के मिलाने वाले ठहरे, यह सरस्वती की दूसरी कुटनी भी एक प्रकार की रानी ही ठहरी, गए हम।

रानी।—विचक्षणा! अपनी बड़ी बहन सुलक्षणा से कह कि भैरवानन्द जी की पूजा कर के उन को यथायोग्य स्थान दे।

विचक्षणा—जो आज्ञा।

रानी ।—महाराज ! अब हम महल में जाते हैं, क्योंकि बहिन को अभी कपड़ा पहराना और सिङ्गार कराना है ।

राजा ।—इस को सिंगारना तो मानों चंपे के थाल में कस्तूरी भरना है, पर सांझ हो चुकी है अब हम भी तो चलते हैं ।

(नेपथ्य में दो बैतालिक गाते हैं)

प० वै० ।—(राग गौरी) भई यह साँझ सबन सुखदाई ।
मानिक गोलक सम दिन मनि मनु संपुट दियो छिपाई ॥
अलसानी दृग मूंदि मूंदि के कमल लता मन भाई ।
पच्छी निज निज चले बसेरन गावत काम बधाई ॥

दू० वै० ।—(राग पूरबी) देखो बीत चल्यो दिन प्यारे, आइ गई रतियां हो रामा । दीपक बरे निकस चले तारे हो, हिलत नहीं पतियां हो रामा ॥ दासिन महलन सेज बिछाई हो; मान भई मतियां हो रामा । काम छोड़ि घर फिरै सबै नर हो, लगीं तिय छतियां हो रामा ॥

(जवनिका गिरती है ।)

पहिला अङ्क समाप्त हुआ ।

विद्यासुन्दर

दूसरा अङ्क ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

स्थान—विद्या का महल

(विद्या बैठी है और चपला पंखा हांकती है और सुलोचना पान का डब्बा लिये खड़ी है) ।

सुलोचना ।—(बीड़ा देकर) राजकुमारी, एक बात पूछूं पर जो बताओ ।

वि० ।—क्यों सखी क्यों नहीं पूछती, मेरी ऐसी कौन सी बात है जो तुम लोगों से छिपी है ?

सुलोचना ।—और कुछ नहीं मुझे केवल इतना पूछना है कि कई दिन से तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो रही है, सर्वदा अनमनी सी बनी रहती हो, और खान पान सब छूट गया है, और दिन दिन शरीर गिरा पड़ता है, रात दिन मुंह सूखा रहता है, इसका कारण क्या है ?

वि० ।—(मुंह नीचा कर लाज से चुप रह जाती है)

सुलोचना ।—(बीड़ा देकर) यह तो मैं पहिले ही जानती थी कि तुम न कहोगी ।

वि० ।—नहीं सखी मैं क्यों न कहूंगी पर तू क्या उस का कारण अब तक नहीं जानती ?

सुलो० ।—जो जानती तो क्यों पूछती ?

वि० ।—हीरा मालिन जो उस दिन माला लाई थी वह क्या तूने नहीं देखी थी ?

सुलो० ।—हां देखी तो थी, तो उससे क्या ?

वि० ।—और उस दिन छत पर से मैं जिसे वृक्ष तले देखने गई थी उसे तू ने नहीं देखा था ?

सुलो० ।—हां सो सब जानती हूं ।

वि० ।—तो अब नहीं क्या जानती ?

सुलो० ।—तो फिर उस में इतना सोच विचार क्यों चाहिये केवल एक बेर बड़ी रानी जी से कहने मे सब काम सिद्ध हो जायगा ।

चपला ।—वाह वाह क्या इसी बात का इतना सोच विचार था, तो मैं अभी जाती हूं (जाना चाहती है)

वि० ।—नहीं नहीं ऐसा काम कभी न करना, नहीं तो सब बात बिगड़ जायगी ।

चप० ।—क्यों इस में दोष क्या है ?

सुलो० !—और फिर यह न होगा तो होगा क्या ?

वि० ।—सखी मेरी प्रतिज्ञा ने सब बात बिगाड़ रक्खी है !

चप० ।—क्यों ?

वि० ।—मा से कह देने से फिर उन के संग विचार करना पड़ेगा, और उस में जो मैं जीती तौभी अनुचित है क्योंकि मैं अपना प्राण धन सब उन से हार चुकी हूं और फिर उन से विवाह

भी कैसे होगा, और वह जीते तो इस बात का लोगों को निश्चय कैसे होगा कि गुणसिन्धु राजा के पुत्र यही हैं और निश्चय बिना तो विवाह भी नहीं हो सकता, इस से मेरा जी दुविधे में पड़ा है—और जिस दिन से मैंने उन्हें देखा है उस दिन से अपने आपे में नहीं हूं क्योंकि उस मनमोहन रूप को देख कर मैं कुल और लाज दोनों छोड़ चुकी हूं और उस विषय में जो २ उमंग उठते हैं वह कहने के बाहर हैं औ सखियो! तुम लोग भी तो स्त्री हो अपने ऐसा जी सब का समझो। हाय, मुझे कोई उपाय नहीं दिखाता।

(गाती है) (राग सोरठ)

सखी हम कहा करैं कित जायं ?
बिनु देखे वह मोहिनि मूरति नैना नाहिं अघायं ॥१॥
कछु न सुहात धाम धन गृह सुख मात पिता परिवार।
बसति पलक हिय मैं उन की छबि नैनन वही निहार ॥२॥
बैठत उठत सयन सोवत निसि चलत फिरत सब ठौर।
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और ॥३॥
हमरे तो तन मन धन प्यारे मन बच क्रम चित माहिं।
पै उन के मन की गति सजनी जानि परत कछु नाहिं ॥४॥
सुमिरन वही ध्यान उन को ही मुख मैं उन को नाम।
दूजी और नाहिं गति मेरी बिनु पिय और न काम ॥५॥
नैना दरसन बिनु नित तलफैं श्रवन सुनन कों कान।
बात करन कों मुख तलफैं, गर मिलिवे कों ये प्रान ॥६॥

सुलो० ।—हां इन बातों को तो मैं समझती हूं पर कर क्या सकती हूं क्योंकि कोई उपाय नहीं दिखाता। हम तो तेरे दुख से दुखी और तेरे सुख से सुखी हैं जो किसी उपाय से यह सुख होय तो हम सब अपने शरीर बेंच कर भी उसे कर सकती हैं, परन्तु वह ऐसी कठिन बात है कि इस का उपाय ही नहीं है।

चप० ।—इस में क्या सन्देह, आज दिन राजा के प्रताप से सब देश थर थर कांपता है और द्वारों पर चौकीदार यमदूत की भांति खड़े रहते हैं, तब फिर ऐसी भयानक बात कैसे हो सकती है।

वि० ।—(लम्बी सांस ले कर) हाय सखी अब मैं क्या करूंगी जो शीघ्र ही कोई उपाय न होगा तो प्राण कैसे बचैंगे यह प्रीत दइमारी बड़ी दुखद होती है—

(गाती है) (राग बिहाग)

बावरी प्रीति करौ मति कोय।
प्रीति किये कौने सुख पायो मोहि सुनाश्रो सोय ॥१॥
प्रीति कियो गोपिन माधव सों लोक लाज भय खोय।
उन कों छोड़ि गये मथुरा को बैठि रहीं सब रोय ॥२॥
प्रीति पतङ्ग करत दीपक सों सुन्दरता कहं जोय।
सो उलटो तेहि दाह करत है पच्छ नसावत दोय ॥३॥
जानि बूझि के प्रीति करी हम कुल मरजादा धोय।
अब तो प्रीतम रंगी रंग मैं होनी होय सो होय ॥४॥

हीरा मालिन ने हम को वचन तो दिया है कि किसी भांति उसे एक बेर तुझ से मिला दूंगी, पर देखूं अब वह क्या उपाय करती है।

(एक सुरंग का मुंह खुलता है और उस में से सुन्दर निकलता है)

(सब सखी घबड़ा कर एक दूसरी का मुंह देखती है और विद्या लाज से मुंह नीचे कर लेती है)

चप० ।—अरे यह कौन है और कहां चला आता है!

सुलो० ।—सोई तो मैं घबड़ाती हूं कि यह कौन है और कहां से आया है, अब मैं चोर २ कह कर पुकारती हूं जिस में सब चौकीदार लोग दौड़ कर हम लोगों को बचावैं।

वि० ।—(हाथ से पुकारने का निषेध कर के धीरे से) नहीं २ मैं समझती हूं कि यह चोर नहीं है, मेरा चितचोर है कोई जाकर उस से पूंछो।

चप० ।—भला देखो मेरी छाती कैसी धड़कती है इस से मैं तो नहीं पूछने की (सुलोचना से) सुलोचना तू जाकर पूछ आ यह कौन है।

सुलो० ।—(सुन्दर से) तुम कौन हो और बिराने घर में क्यों घुस आये हो सच बतलाओ क्योंकि हम लोगों का डर से कलेजा कांपता है, इस से कहो कि तुम देवता हौ, या दानव हौ, या मनुष्य हौ ?

सु० ।—(मुसुका कर) नहीं सखी, डरने का क्या काम है? न मैं देवता हूं, न दानव, मैं तो साधारण मनुष्य हूं, और कांचीपुर

के महाराज गुणसिन्धु का पुत्र हूं, और मेरा नाम सुन्दर है, भाट के मुख से तुम्हारी राजकन्या के बिचार का समाचार सुन के यहां आया हूं परन्तु विचार तो दूर रहै तुम्हारी सभा में अविचार बहुत है।

चप०।—(धीरे से) सखी यह तो वही है।

सुलो०।—क्यों हमारी सभा में अविचार कौन सा है ?

सं०।—और अविचार किस को कहते हैं ? जो कोई परदेशी अतिथि आवे तो न तो उस का आदर होता है, और न कोई उसे बैठने को कहता है।

(विद्या संकेत से चपला से बैठाने को कहती है और सुन्दर बैठता है, और विद्या लज्जा से वस्त्र से अपना सब शरीर ढांक लेती है)

सुं०।—(सुलोचना से) सखी विद्यावती के गुण की मैंने जैसी प्रशंसा सुनी थी उस से भी अधिक आश्चर्य गुण देखने में आये।

सुलो०।—ऐसे आप ने कौन आश्चर्य गुण देखे ?

सुं०।—जाल में चन्द्रमा को फसाना, बिजली को मेघ में छिपाना, और वस्त्र से कमल की सुगंधि को मिटाना, यह सब बात तुम्हारी राजकन्या कर सकती है।

सुलो०।—(हंस कर) यह आप कैसी बातें कहते हैं, क्या ये बातें हो सकती हैं।

सुं०।—जो नहीं हो सकतीं तो तुम्हारी राजकन्या ने अंचल से मुख क्यों छिपा लिया ?

सुलो० ।—(हंस कर) आप बड़े सुरसिक और पंडित हैं इस से मैं आप की बात का उत्तर नहीं दे सकती, "दीपक की रवि के उदय बात न पूंछे कोय" पर हां जो लज्जा न करती तो हमारी सखी कुछ उत्तर देती ।

सुं० ।—(हंस कर) तो आज तुम्हारी राजकन्या हम से हार गई ।

सुलो० ।—क्यों हार गई ?

सुं० ।—और हारने के माथे क्या सींग होती है ? मुझे देख कर लाज के मारे वह कुछ उत्तर नहीं दे सकती इसी से हार गई ।

सुलो० ।—(हंस कर) आप को सब कहना शोभा देता है ।

वि० ।—(सखी से) सुलोचने, तुझे कुछ उत्तर देने नहीं आता, तू क्यों नहीं कहती कि हमारी विद्यावती ने विद्या के विचार का प्रण किया था कुछ चोरी विद्या के विचार का प्रण नहीं किया था, आप सेन दे कर घुस आये और अब बातैं बनाते हैं ।

सुं० ।—(हंस के) हां इस देश के विचार की चाल ही यही है और उलटे हमी चोर बनाये जाते हैं, मैं ने क्या अपराध किया था कि उस दिन वृक्ष के नीचे घंटों खड़ा किया गया और तुम्हारी राजकुमारी ने हमारा तन मन धन सब लूट लिया । अब कहो पहिले चोरी का आरंभ किस ने किया, वही बात हुई कि " उलटा चोर कोतवाल को डांड़ै " ।

वि० ।—और सुनो ! यह चोर नहीं हैं बड़े साधू हैं । सच है साधू न होते तो सेन देने की विद्या कहां सीखते ! यह कर्म साधुओं

ही के तो हैं सखियो ! आज तुमने बड़े महात्मा का दर्शन किया निश्चय तुम्हारे सब पाप कट गये क्योंकि शंख बजानेवाले साधू तो बहुत देखे थे पर सेन लगानेवाले आज ही देखने में आये ।

सुं० । (हंस कर) इस में क्या सन्देह है, सखियो ! तुम परीक्षा कर लो कि हम में सब साधुओं के लक्षण हैं कि नहीं ? देखो मैं अपने चोर को ढूढ़ता २ यहां तक आया और उसे पा कर उस को पकड़ने और धन फेर लेने के बदले और भी जो कुछ मेरे पास बच गया है भेंट किया चाहता हूं, परन्तु जो यह लें।

वि० ।—(धीरे से) दीजिये ।

सुं० ।—(प्रसन्न हो कर) सखियो ! तुम साक्षी रहना, मन और प्राण तो इन्हों ने चोरी कर के ले लिये, एक देह बच गई है, इसे मैं अपनी ओर से अर्पण करता हूं (विद्या से) प्यारी, मैं केवल इसी हेतु आया था सो तुम ने मुझे अपना कर लिया है, अब इसका निबाह करना, (हाथ बढ़ाता है)

वि० ।—(लाज से) यह मैंने कब कहा था ?

सुलो० ।—(विद्या से हंस कर) सखी, अब तेरी ये बातें न चलैंगी आज के विचार में तो तू हार गई ।

च० ।—इस में क्या संदेह है, यहां न्याय के विचार का क्या काम है जो रस के विचार में जीतै सो जीता क्योंकि न्याय का विचार कर के स्त्री को जीतना यह भी एक अविचार है ।

सुलो० ।—(हंस कर विद्या से) सखी अब विलम्ब क्यों करती है

क्योंकि राजपुत्र तुझे अपना शरीर समर्पण कर के पाणिग्रहण के हेतु हाथ फैलाये हुए हैं इस से या तो तुम उस की बनो या उसे अपना करो क्योंकि आज से हम उस में और तुझ में कुछ भेद नहीं समुझतीं और हस्तकमल के संग अपना हृदयकमल भी राजपुत्र के अर्पण करो क्योंकि अच्छे काम में विलम्ब न करना चाहिए।

सुं०।—(प्रसन्नता से विद्या का हाथ अपने हाथ में लेकर) अहाहा ऐसा भी कोई दिन होगा।

सुलो०।—अब होने में विलम्ब क्या है ? परन्तु मैं यह विनती करती हूं कि हमारी राजकुमारी अत्यन्त सीधी और सच्ची है क्योंकि इस ने पहिले ही जान पहिचान में आप का विश्वास कर के अपना तन मन धन आप के अर्पण किया परन्तु आप सुरसिक और पण्डित हैं इस से इस धन की रक्षा का कोई उपाय कीजिये (फूल की माला से दोनों का हाथ बांधती है) हम भगवान से प्रार्थना करती हैं कि तुम दोनों सर्वदा इसी फूल की माला की भांति आपुस में प्रेम के डोरे में बंधे रहो।

सुं०।—सखी, हम भी हृदय से एवमस्तु कहते हैं।

च०।—राजनन्दिनी तो इस समय कुछ कहने ही की नहीं पर मैं उस की ओर से कहती हूं कि ऐसा ही हो।

सुलो०।—ऐसी नई बहू की प्रतिनिधि कौन नहीं होना चाहती ?

च०।—चल तुझे तो ऐसी ही बातें सूझती हैं।

सुलो०।—अब नये दुलहे दुलहिन को दूर २ बैठाना उचित नहीं

है, इस से कृपा कर के दोनों एक पास बैठो जिसे देख कर हमारी आंखें सुखी हों।

मुंदर।—(हंस कर के) ठीक है (विद्या के पास बैठता है और विद्या कटाक्ष से देखती है)।

सुलोचना।—(हंस कर) सखी, सब बातें हो चुकीं तो अब गान्धर्व विवाह की कुछ रीतैं बची क्यों जाती हैं और हमारी आज्ञा करने में तुझे क्या लज्जा है, अब तुम दोनों माला का अदला बदला करो जिसे देख कर हम सुखी हों।

(सुन्दर के यत्न से दोनों परस्पर माला बदलते हैं और सखी लोग आनन्द से ताली बजाती हैं)।

विद्या।—(मन ही मन) विधाता क्या सचमुच आज ऐसा दिन हुआ है, या कि मैं सपना देखती हूं—नहीं यह सपना है।

च०।—हमारे नेत्र आज सुफल हुए।

सुलो०।—(आनन्द से गाती है)।

आजु अति मोहि आनन्द भयो।
बहुत दिवस की इच्छा पूजी सब दुख दूर गयो॥
यह सोहाग की राति रसीली सब मिलि मंगल गाओ।
जनम लिये को आज मिल्यो फल अंखियां निरखि सिराओ॥
दिन दिन प्रेम बढ़ो दोउन को सब अति ही सुख पावैं।
चिरजीवो दुलहा अरु दुलहिन दोउ कर जोरि मनावैं॥

सुन्दर।—अहाहा कैसा मधुर गीत है, सखी जो तुझे कष्ट न हो तो एक गीत और गा।

सलो० ।—वाह ऐसे आनन्द के समय में और मैं गीत न गाऊं, उस में नये जमाई की पहिली आज्ञा न माननी तो सर्वथा अनुचित है ।

च० ।—सखी हमारी राजनन्दिनी ने उस दिन जो गीत बनाई थी सो क्यों नहीं गाती ? क्योंकि नये बर उस गीत से निश्चय बड़े प्रसन्न होंगे ।

(विद्या आंखों से निषेध करती है)

सलो० ।—हां सखी बहुत ठीक कहा (विद्या से) क्यों सखी इस में दोष क्या है तू क्यों निषेध करती है अब तो मैं निश्चय वही गीत गाऊंगी । (चपला ताल देती है और सुलोचना गाती है ।)

(राग देस)

जहाँ पिय तहीं सबै सुख साज ।
बिनु पिय जीवन व्यर्थ सखी री यद्यपि सबै समाज ।
जो अपुनो पीतम संग नाहीं सुरपुर कौने काज ॥
निरजन बनहूँ मैं पीतम के संग सुरपुर को राज ॥ १ ॥

सुं० ।—वाह २ बहुत अच्छा गीत गाया, जैसे मेरे कान में अमृत की धारा की वर्षा हुई, सखी सुरपुर सुख आज मुझे यथार्थ अनुभव होता है ।

सुलो० ।—(हंस कर) क्या मेरे गाने से !—जो होय अब रात बहुत गई और नई बहू के मिलाप में पहिलेही दिन बहुत विलम्ब करना योग्य नहीं ।

सुं० ।—हां सखी, अब जाता हूं (अगूठी उतार कर दोनों सखियों को देता है) यह हमारे सन्तोष का चिन्ह सर्वदा अपने पास रखना ।

सुलो० ।—(लेती है) यद्यपि यह अंगूठी सहजही बहुमूल्य है परन्तु आप के सन्तोष का चिन्ह होने से और भी अमूल्य हो गई और इसे हम सर्वदा बड़े प्यार से अपने पास रक्खैंगी ।

च० ।—आप का प्रसादी फूल भी हमैं रत्न के समान है ।

सुलो० ।—तो अब उठिए ।

सुं० ।—तुम आगे चलो हम लोग भी आते हैं ।

सुलो० ।—(उठ कर) इधर आइए ।

(सुलोचना और चपला आगे २, उनके पीछे विद्या का हाथ पकड़े हुए सुन्दर चलता है और जवनिका गिरती है)

दूसरा गर्भाङ्क ।

स्थान--विद्या का मन्दिर ।

(विद्या और मालिन बैठी है)

वि० ।—कहो उन के लाने का क्या किया, लम्बी चौड़ी बातैं ही बनाने आती हैं कि कुछ करना भी आता है ?

मा० ।—भला इस में मेरा क्या दोष है मैं ने पहिले ही कहा था कि यह काम छिपा कर न होगा, जब मैं ने कहा कि मैं रानी से कहूं तौ भी तुमने मना किया और उलटा दोष भी मुझी

को देती हो, उस दिन तुम ने कहा कि उन से कहो वे कोई उपाय आप सोच लेंगे, उस का उन ने यह उत्तर दिया कि "मौसी मैं परदेशी हूं इस नगर की सब बातें नहीं जानता और राजा के घर में चोरी से घुस कर बच जाना भी साधारण कर्म नहीं है। जब तुम्हीं कोई उपाय नहीं सोच सकती तो मैं क्या सोचूंगा और अब मुझे मनुष्यों का कुछ भरोसा नहीं है इस से मैं अब दैवकर्म्म करूंगा सो तू घर में एक अग्नि का कुंड बना दे और रात भर मेरा पहरा दिया कर" वे तो यों कहते हैं पर देखूं उन का देवता कब सिद्ध होता है—भला वह तो चाहे जब हो एक नई बात और सुनने में आई है जिस से जी में तो रुलाई आती है और ऊपर से हंसी आती है।

वि०।—क्या कोई और भी नई बात सुनने में आई है?

ही० मा०।—हां, मैं ने सुना है कि राजसभा में कोई संन्यासी आया है।

वि०।—तो फिर क्या?

ही० मा०।—मैं सुनती हूं कि वह विचार में सभा को तो जीत चुका है और अब कहता है मैं राजकुमारी से शास्त्रार्थ करूंगा।

वि०।—ऐसा कभी हो सकता है कि मैं संन्यासी से विचार करूं।

ही० मा०।—क्यों नहीं, प्रण करने के समय में तुम ने यह प्रतिज्ञा थोड़ी ही की थी कि संन्यासी को छोड़ कर मैं प्रण करती हूं, अब तो जैसा राजकुमार वैसा ही संन्यासी।

वि० ।—तो मैं तो उस से विचार नहीं करने की ।

ही० मा० ।—अब नहीं करने से क्या होता है विचार तो करना ही होगा और फिर इस में दोष क्या है, जैसा तुम्हारा दिव्य राजा के कुल में जन्म है वैसा ही दिव्य संन्यासी वर मिल जायगा, मैंने तो चन्द्रमा का टुकड़ा बर खोज दिया था पर तू कहती है कि रानी से उस का समाचार ही मत कहो, तो अब कौन उपाय करूं—अच्छा है जैसी तुम्हारी चोटी है कुछ उस से भी लम्बी उस की डाढ़ी है, सिर पर बड़ी भारी जटा है और सब अंग में भभूत लगाए हैं, ऐसे जोगी नित्य नित्य नहीं आते-अहाहा कैसा अद्भुत रूप है !

(गाती है) (राग देस)

अरे यह जोगी सब मन मानै ।
लम्बी जटा रँगीले नैना जंत्र मंत्र सब जानै ॥
कामदेव मनु काम छोड़ि कै जोगी ह्वै बौरानै ।
या जोगिया की मैं बलिहारी जग जोगिन कियो जानै ॥
अरे यह जोगी०--॥ १ ॥

ऐसा रसिक जोगी वर मिलता है अब और क्या चाहिए ?

वि० ।—चल तू भी चूल्हे में जा और जोगी भी ।

ही० मा० ।—ऐसा कभी न कहना मैं भले चूल्हे में जाऊं पर संन्यासी बिचारा क्यों चूल्हे में जायगा ? भला यह तो हुआ पर अब मैं यह पूछती हूं कि एक भले मानस के लड़के को मैंने आस दे कर घर में बैठा रक्खा है, उस की क्या दशा

होगी और मैं उस से क्या उत्तर दूंगी क्योंकि तुम तो महादेव जी की सेवा में जाओगी पर यह बिचारा क्या करैगा—और क्या होगा। तुम संन्यासी को ले कर आनन्द करना और वह बिचारा आप संन्यासी हो कर हाथ में दंड कमंडल ले कर तुम्हारे नाम से भीख मांग खायगा।

वि०।—चल—लुच्ची—ऐसी दशा शत्रु की होय—मैं तो उसे उसी दिन बर चुकी जिस दिन उस का आगमन सुना और उसी दिन उसे तन मन धन दे चुकी जिस दिन उस का दर्शन किया, इस से अब प्रण कहां रहा और विचार का क्या काम है?

ही० मा०।—पर मन के लड्डू खाने से तो काम नहीं चलेगा। क्योंकि मन से इस ने इन्द्र का राज कर लिया, इस से क्या होता है, सपने की सम्पति किस काम की कि जब आंख खुली तो फिर वही टूटी खाट—राजा यह बात कैसे जानैंगे और रानी इस बात को क्या समझती हैं कि मेरी कन्या का गान्धर्व विवाह हो चुका है और जब संन्यासी से व्याह देंगे तब तुम क्या करोगी और वह तब कहां जायगा?

वि०।—हां तुम तो इस बात से बड़ी प्रसन्न हो। तुम्हारी क्या बात है। मैंने कई बार कहा कि उस को एक बार मुझ से मिला दे पर तू उसे कब छोड़ती है। अरी पापिन जमाई को तो छोड़ देती पर तौ भी तू धन्य है कि इतनी बूढ़ी हुई और

अभी मद नहीं उतरा। जब बुढ़ापे में यह दशा है तो चढ़ते यौवन में न जानै क्या रही होगी।

ही० मा०।—सच है उलटा उराहना तो मुझे मिलैहीगा क्योंकि अब तो सब दोष मुझे लगैगा, तुम को सब बात में हंसी सूझती है पर मुझे ऐसा दुख होता है कि उस का वर्णन नहीं होता।

जो बिधि चन्द्रहिं राहु बनायो। सोइ तुम कहं संन्यासी लायो॥

इस दुःख से प्राण त्याग करना अच्छा है—मेरी तो छाती फटी जाती है—यह मैं ने जो सुना सो कहा अब तुम जानो तुम्हारा काम जानै, मैंने जो सुना सो कहा।

वि०।—नहीं नहीं मैं तो तेरे भरोसे हूं जो तू करेगी सो होगा—भला उन से भी एक बेर यह समाचार कह दे।

(चपला आती है)

च०।—राजकुमारी पूजा का समय हुआ।

वि०।—चलो सखी मैं अभी आई।

(चपला जाती है)

ही० मा०।—तो मैं आज जा कर उस से यह वृत्तान्त कहती हूं, इस पर वह जो कहैगा सो मैं कल तुम से फिर कहूंगी।

वि०।—ठीक है, कल अवश्य इस का कुछ उपाय करैंगे।

(जवनिका गिरती है)
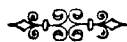
तृतीय गर्भाङ्क।

स्थान—विद्या का मन्दिर।

(विद्या अकेली बैठी है और सुन्दर आता है)

वि० ।—आज मेरे बड़े भाग्य हैं कि आप सांझ ही आये।

सुं० ।—(पास बैठ कर) प्यारी, मुझे जब तेरे मुखचन्द्र का दर्शन हो तभी सांझ है।

वि० ।—परन्तु प्राणनाथ, यह दिन सर्व्वदा न रहैगा चार दिन की चांदनी है।

सुं० ।—हां यह तो मैं भी कहता हूं।

वि० ।—क्यों ?

सुं० ।—क्योंकि जब मैं "बैठिए" तो कभी नहीं सुनता और "जाइए" प्रायः सुनता हूं तो अवश्य ऐसा होगा।

वि० ।—वाह वाह ! अब तो आप बहुत ही हंसी करना सीखे हैं—कहिए कै उपवास में यह विद्या आई है (पान का डब्बा देती है) लीजिए इसे छूके शुद्ध कर दीजिए।

सुं० ।—पहिले आप तो मुझे पवित्र कीजिए पीछे मैं जब आप शुद्ध हो जाऊंगा तब इसे भी पवित्र कर सकूंगा।

वि० ।—भला यह बात तो हुई आज सबेरे मालिन आई थी उस का समाचार आप जानते हैं ?

सुं० ।—हां वह तो नित्य सबेरे आती है आज विशेष क्या हुआ, क्या उस को किसी ने एक दो धौल लगाई ?

वि० ।—भला, मेरे सामने ऐसा कभी हो सकता है और फिर वह ऐसी डरपोकनी है कि जो उस को कोई मारता तो वह तुरंत रानी से जा कर समाचार कह देती तो भी तो बुरा होता ।

सुं० ।—तो उस से बहुत चौकस रहना चाहिए ।

वि० ।—नहीं, इसका कुछ भय नहीं है पर एक दूसरी बात जो मैंने सुनी है उस का बहुत भय है ।

सुं० ।—क्या कोई दूसरा उपद्रव हुआ ?

वि० ।—एक बड़े पण्डित संन्यासी आए हैं वह मुझ से विचार किया चाहते हैं ।

सुं० ।—(विषाद से) अरे यह बड़ा उपद्रव हुआ—मैं उस संन्यासी को जानता हूं क्योंकि जब मैं वर्द्धमान को आता था तो वह मुझे मार्ग में मिला था, वह निश्चय बड़ा पण्डित है, इस से उस को विचार में जीतना कठिन है ।

वि० ।—तब क्या होगा ?

सुं० ।—होगा क्या "चोर का धन बटपार लूटै ।"

वि० ।—भगवान ऐसा न हो कि मुझे उस से विचार करना हो ।

सुं० ।—जो महाराज विचार करने की आज्ञा देंगे तो करना ही होगा ।

वि० ।—हां यह तो ठीक है—हाय हाय मैं बड़े द्विविधे में पड़ रही हूँ कि क्या करूँगी ।

सुं० ।—तुम्हें किस बात का सोच है, पुराना कपड़ा उतारा नया पहिना, सोच तो मुझे है ।

वि० ।— (उदास हो कर) चलो सब समय हँसी नहीं अच्छी होती "पुराना उतारा नया पहिना" यह तो पुरुषों का काम है स्त्री बिचारी तो एक बेर जिसकी हुई जन्म भर उसी की हो रहती है ।

सुं० ।—(हंस कर) ऐसा मत कहो क्योंकि स्त्रियों के चरित्र अत्यन्त विलक्षण होते हैं ।

वि० ।—मैं तो नये पुरुषों का मुख भी नहीं देखने पाती मैं नई पुरानी क्या जानूं आपही नित्य नई नई स्त्री को देखते हैं आप जानैं ।

सुं० ।—तो क्या हुआ इतने दिन तक राजसुख भोग किया अब जोगिन का सुख भोग करना ।

वि० ।—यह बात कैसे हो सकती है कि जिस के वियोग में एक पलक प्रलय सा जान पड़ता है उस को छोड़ कर मैं जोगिन हूंगी—हा ! मैं संन्यासिनी हूंगी—हे भगवान तू ने कर्म्म में क्या क्या लिखा है ! (अत्यन्त शोच करती है और लम्बी सांसैं लेती है) ।

सुं० ।—(हंस कर) और जो वह संन्यासी हमीं होयं ।

वि० ।—यह बात कैसी ?

सुं० ।—नहीं मैंने एक बात कही जो वह संन्यासी हमीं होयं ।

वि० ।—तो फिर तुम्हारे लिये तो मैं जोगिन आप ही हो रही हूं इस में क्या कहना है—जो यह बात सच होय तो शीघ्र ही

कहो तुम्हैं मेरी सौगन्द है—जब से मैं ने उस का समाचार सुना है तब से मुझे रात को नींद नहीं आती।

सुं०।—(हंस कर) जो तुम्हैं दुःख होता है तो मैं कहता हूं पर किसी से कहना मत, अपनी सखियों से भी न कहना। देखो मैं राजसभा देखने को संन्यासी बन के गया था और मैंने विचारा कि यहां विचार की चरचा निकालैं देखैं क्या फल होता है।

वि०।—हाय हाय अब मेरे प्राण में प्राण आए—अरे तू बड़ा बहुरूपिया है और तुझे बड़े बड़े नखरे आते हैं। पुरुष में तो यह दशा है जो स्त्री होता तो न जाने क्या करता, चल तू बड़ा छलिया है—हाय हाय मुझे कैसा धोखा दिया, भला तू ने यह विद्या कहां सीखी। (कुछ ठहर कर) हां तब—तब क्या हुआ ?

सं०।—तब क्या हुआ सो तो तुम जानती होगी पर राजा ने कुछ निश्चय नहीं किया।

वि०।—यह बड़ा आनन्द हुआ मानों आज मेरे छाती पर से एक बोझा उतर गया, मुझे आज रात को नींद सुख से आवैगी कल मैंने मालिन से हंसी में यह बात उड़ा तो दी थी पर भीतर मेरा जीही जानता था और मैंने आप से भी कई बेर कहना चाहा पर सोचती थी कि कैसे कहूं।

(सुलोचना आती है)

सुलो०।—राजकुमारी, रात बहुत गई जो बहुत जागोगी तो कल दिन को जी आलस में रहैगा।

वि० ।—नहीं सखी अब जाती हूं (सुलोचना जाती है और विद्या सुन्दर भी उठ कर चलते हैं पर एक बेर मुझे भी उस रूप का दर्शन करा देना क्योंकि मुझे भी तो जोगिन बनना है ।

सुं० ।—प्यारी, उस प्रेम के जोगी की जोगिन होना तुम्हीं को शोभा देता है ।

वि० ।—नाथ, तुम जो कहौ सो सब उचित है ।

(जवनिका पतन)

चन्द्रावली-नाटिका

तीसरा अङ्क ।

(समय तीसरा पहर, गहिरे बादल छाये हुए)

(स्थान तालाब के पास एक बगीचा)

(झूला पड़ा है, कुछ सखी झूलती, कुछ इधर उधर फिरती हैं ।)

[चन्द्रावली, माधवी, काममंजरी, विलासिनी, इत्यादि एक स्थान पर बैठी हैं, चन्द्रकान्ता, वल्लभा, श्यामला, भामा झूले पर हैं, कामिनी और माधुरी हाथ मे हाथ दिये घूमती हैं ।]

का० ।—सखी, देख बरसात भी अबकी किस धूम धाम से आई है मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इन के जीतने को अपनी सैना भिजवाई है । धूम से चारो ओर से घूम घूम कर बादल परे के परे जमाये बगपंगति का निशान

उड़ाये लपलपाती नंगी तलवार सी बिजली चमकाते गरज गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखा सा कुछ अलग पुकार पुकार गा रहे हैं। कुल को मर्याद ही पर इन निगोड़ों की चढ़ाई है। मनोरथों से कलेजा उमगा आता है और काम की उमंग जो अंग अंग में भरी हैं उन के निकले बिना जी तिलमिलाता है। ऐसे बादलों को देख कर कौन लाज की चद्दर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है।

माधु०।—विशेष कर वह जो आप कामिनी हो (हंसती है)।

का०।—चल तुझे हंसने ही की पड़ी है। देख, भूमि चारो ओर हरी हरी हो रही है। नदी नाले बावली तालाब सब भर गये। पच्छी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ में चुप चाप सकपके से होकर बैठे हैं। बीरबहूटी और जुगनू पारी पारी रात और दिन को इधर उधर बहुत दिखाई पड़ती हैं। नदियों के करारे धमाधम टूट कर गिरते हैं। सर्प्प निकल निकल कर अशरण से इधर उधर भागे फिरते हैं। मार्ग बन्द हो रहे हैं। परदेशी जो जिस नगर में हैं वहीं पड़े पड़े पछता रहे हैं, आगे बढ़ नहीं सकते। वियोगियों को तो मानों छोटा प्रलय काल ही आया है।

माधु०।—छोटा क्यों बड़ा प्रलय काल आया है। पानी चारो ओर से उमड़ ही रहा है। लाज के बड़े बड़े जहाज गारद हो चुके,

भया फिर वियोगियों के हिसाब तो संसार डुबाही है तो प्रलय ही ठहरा।

का० ।—पर तुझ को तो वटे कृष्ण का अवलम्ब है न, फिर तुझे क्या, भांडीर वट के पास उस दिन खड़ी बात करही रही थी, गए हम–

माधु० ।—और चन्द्रावली ?

का० ।—हां, चन्द्रावली बिचारी तो आप ही गई बीती है, उस में भी अब तो पहरे में है, नजरबन्द रहती है, झलक भी नहीं देखने पाती, अब क्या—

माधु० ।—जाने दे नित्य का झखना। देख फिर पुरवैया झकोरने लगी और वृत्तों से लपटी लताएं फिर से लरजने लगीं। साड़ियों के आंचल और दामन फिर उड़ने लगे और मोर लोगों ने एक साथ फिर शोर किया। देख यह घटा अभी गरज गई थी पर फिर गरजने लगी।

का० ।—सखी, बसन्त का ठंढा पवन और सरद की चांदनी से राम राम कर के वियोगियों के प्राण बच भी सकते हैं, पर इन काली काली घटा और पुरवैया के झोंके तथा पानी के एक तार झमाके से तो कोई भी न बचैगा।

माधु० ।—तिस में तू तो कामिनी ठहरी तू बचना क्या जानै।

का० ।—चल ठठोलिन। तेरी आंखों में अभी तक उस दिन की खुमारी भरी है, इसी से किसी को कुछ नहीं समझती। तेरे सिर बीते तो मालूम पड़े.

माधु०।--बीती है मेरे सिर। मैं ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़ूं।

का०।—चल, तू हुई है क्या कि न उबल पड़ैगी। स्त्री की बिसात ही कितनी। बड़े बड़े योगियों के ध्यान इस बरसात में छूट जाते हैं, कोई योगी होने ही पर मनही मन पछताते हैं, कोई जटा पटक कर हाय हाय चिल्लाते हैं और बहुतेरे तो तूमड़ी तोड़ तोड़ कर योगी से भोगी हो ही जाते हैं।

माधु०।—तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुंकवाकर तुमड़ी तोड़वा ले।

का०।—चल! तू क्या जाने इस पीर को। सखी, यही भूमि और यही कदम कुछ दूसरे ही हो रहे हैं और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किये देते हैं। तुझे प्रेम हो तब सूझै। इस आनन्द की धुनि में संसार ही दूसरा एक विचित्र शोभावाला और सहज काम जगानेवाला मालूम पड़ता है।

माधु०।--कामिनी, पर काम का दावा है इसी से हेरफेर उसी को बहुत छेड़ा करता है।

(नेपथ्य में बारम्बार मोर कूकते हैं)

का०।—हाय हाय! इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विषपान ही है। इन दईमारों का कूकना और पुरवैया का झकोर कर चलना यह दो बात बड़ी कठिन है। धन्य हैं वे जो ऐसे समय में रंग रंग के कपड़े पहिने ऊंची ऊंची अटा-रियों पर चढ़ी पीतम के संग घटा और हरियाली देखती हैं

वा बगीचों, पहाड़ों और मैदानों में गलबाहीं डाले फिरती हैं। दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रंगीन कपड़े निचोड़ कर चौगुना रंग बढ़ाते हैं। झूलते हैं, झुलाते हैं, हंसते हैं, हंसाते हैं, भींगते हैं, भिंगाते हैं, गाते हैं, गवाते हैं, और गले लगते हैं, लगाते हैं।

माधु० ।—और तेरो न कोई पानी बचानेवाला न तुझे कोई निचोड़नेवाला, फिर चौगुने की कौन कहै ड्योढ़ा सवाया तो तेरा रंग बढ़ेहीगा नहीं।

का० ।—चल लुच्चिन ! जाके पायं न भई बिवाई सो क्या जानै पीर पराई।

(बात करती करती पेड़ की आड़ में चली जाती है)

माधवी ।—(चन्द्रावली से) सखी, श्यामला का दर्शन कर, देख कैसी सुहावनी मालूम पड़ती है। मुखचन्द्र पर चूनरी चुई पड़ती है। लटैं सगबगी हो कर गले में लपट रही हैं। कपड़े अंग में लपट गये हैं। भींगने से मुख का पान और काजल सब की एक विचित्र शोभा हो गई है।

चं० ।—क्यों न हो। हमारे प्यारे की प्यारी है। मैं पास होती तो दोनों हाथों से इस की बलैया लेती और छाती से लगाती।

का० मं० ।—सखी, सचमुच आज तो इस कदंब के नीचे रंग बरस रहा है। जैसी समा बँधी है वैसीही झूलनेवाली हैं। झूलने में रंग रंग की साड़ी की अर्द्ध चन्द्राकार रेखा इन्द्रधनुष की छबि दिखाती है। कोई सुख से बैठी झूले

की ठंढी ठंढी हवा खा रही है, कोई गांती बांधे लांग कसे पेंग मारती है, कोई गाती है, कोई डर कर दूसरी के गले में लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगंद देती है, पर दूसरी उस को चिढ़ाने को झूला और भी झोंके से झुला देती है।

माध०।—हिंडोरा ही नहीं झूलता। हृदय में पीतम को झुलाने के मनोरथ और नैनों में पिया की मूर्त्ति भी झूल रही है। सखी, आज सांवलाही की मेंहदी और चूनरी पर तो रंग है। देख बिजुली की चमक में उस की मुख छबि कैसी सुन्दर चमक उठती है और वैसे पवन भी बार बार घूंघट उलट देता है। देख—

हूलति हिये में प्रान प्यारे के बिरह सूल
फूलति उमंग भरी झूलति हिंडोरे पै।
गावति रिझावति हंसावति सबन हरि-
चन्द चाव चौगुनो बढ़ाइ घन घोरे पै॥
वारि वारि डारौं प्रान हंसनि मुरनि बतरान
मुंह पान कजरारे दृग डोरे पै।
ऊनरो घटा मैं देखि दूनरी लगी है आहा
कैसी आजु चूनरी फबी है मुखगोरे पै॥

चं०।—सखियो, देखो कैसी अंधेर और गजब है कि या रुत मैं सब अपनो मनोरथ पूरो करैं और मेरी यह दुरगति

होय। भलो काहुवै तो दया आवती। (आखों में आंसू भर लेती है।)

माध०।—सखी, तू क्यों उदास होय है। सब कहा करैं हम तो आज्ञाकारिणी दासी ठहरीं हमारो का अखत्यार है तऊ हम मैं सों तो कोऊ कछू तोहि नायं कहै।

का० मं०।—भलो सखी हम याही कहा कहैंगी याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी।

बिला०।—हां सखी हमारी तो दोऊ स्वामिनी हैं। सखी, बात यह है कै खराबी तो हम लोगन की है, दोऊ फेर एक की एक होंयगी। लाठी मारवे सों पानी थोरों हूं जुदा हो जायगो, पर अभी जो सुन पावैं कि ढिमकी सखी ने चन्द्रावलियै अकेली छोड़ि दीनी तो फेर देखौ तमासा।

माध०।—हम्बै बीर। और फिर कामहू तौ हमीं सब बिगारैं। अब देखि कौन नै स्वामिनी सों चुगली खाई। हमारेई तुमारे में सों वहू है। सखी चन्द्रावलियै जो दुःख देयगी वह आप दुःख पावैगी।

चं०।—(आप ही आप) हाय! प्यारे, हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते। प्यारे, फिर फिर यह शरीर कहां और तुम कहां? प्यारे, यह संयोग हम को तो अब की ही बना है, फिर यह बातैं दुर्लभ हो जायंगी। हाय

नाथ ! मैं अपने इन मनोरथों को किस को सुनाऊं और अपनी उमंगें कैसे निकालूं। प्यारे रात छोटी है और स्वांग बहुत हैं। जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा। हाय ! मुझ सी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं। रात दिन रोते ही बीतते हैं। कोई बात पूछने वाला नहीं, क्योंकि संसार में जी कोई नहीं देखता सब ऊपर ही की बात देखते हैं। हाय ! मैं तो अपने पराये सब से बुरी बन कर बेकाम हो गई। सब को छोड़ कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुम ने यह गति की। हाय ! मैं किसकी होके रहूं, मैं किस का मुंह देख कर जिऊं। प्यारे मेरे पीछे कोई ऐसा चाहनेवाला न मिलैगा। प्यारे, फिर दीया लेकर मुझ को खोजोगे। हा ! तुम ने विश्वासघात किया। प्यारे, तुम्हरे निर्दयीपन की भी कहानी चलैंगी। हमारा तो कपोतव्रत है। हाय ! स्नेह लगा कर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो। बकरा जान से गया, पर खाने वाले को स्वाद न मिला। हाय यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे। वाह ! खूब निवाह किया। बधिक भी बध कर सुधि लेता है, पर तुम ने न सुधि ली। हाय ! एक बेर तो आ कर अंक में लगा जाओ। प्यारे जीते जी आदमी का गुन नहीं मालूम होता। हाय ! फिर तुम्हारे मिलने को कौन तरसैगा और कौन रोवैगा। हाय ! संसार छोड़ा भी नहीं जाता। सब दुःख सहती हूं, पर इसी में फंसी पड़ी हूं। हाय नाथ ! चारो ओर से जकड़ कर ऐसी बेकाम क्यों कर

डाली है। प्यारे, योंही रोते दिन बीतैंगे। नाथ! यह हवस मन की मन ही में रह जायगी। प्यारे, प्रगट हो कर संसार का मुंह क्यों नहीं बंद करते और क्यों शंकाद्वार खुला रखते हौ? प्यारे, सब दीनदयालुता कहां गई! प्यारे, जल्दी इस संसार से छुड़ाओ। अब नहीं सही जाती। प्यारे जैसी हैं तुम्हारी हैं। प्यारे, अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ। नाथ, जहां इतने गुन सीखे वहां प्रीति निवाहना क्यों न सीखा? हाय! मझधार में डुबा कर ऊपर से उतराई माँगते हौ; प्यारे सो भी दे चुकीं अब तो पार लगाओ। प्यारे, सब की हद होती है। हाय! हम तड़पैं और तुम तमाशा देखो। जनकुटुम्ब से छुड़ा कर यों छितर बितर करके बेकाम कर देना यह कौन बात है। हाय! सबकी आँखों में हलकी हो गई। जहाँ जाओ वहाँ दूर दूर, उस पर यह गति। हाय! "भामिनी तें भौंड़ी करी, मानिनी ते मौड़ी करी कौड़ी करी हीरा तें कनौड़ी करी कुल तें" तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को जी चाहता है। बस अब मैं गाली दूंगी। और क्या कहूँ, बस आप आप ही हौ; देखो गाली में भी तुम्हें मैं मर्मवाक्य कहूँगी-झूठे, निर्दय; निघृ॑ण, "निर्दय हृदयकपाट" बखेड़िये और निर्लज्ज, ये सब तुम्हें सच्ची गालियाँ हैं; भला जो कुछ करना ही नहीं था तो इतना क्यों झूठ बके? किसने बकाया था? कूद कूद कर प्रतिज्ञा करने बिना क्या डूबी जाती थी? झूठे! झूठे!!

झूठे !!! झूठे ही नहीं वरंच विश्वासघातक; क्यों इतनी छाती ठोंक और हाथ उठा उठा कर लोगों को विश्वास दिया ? आप ही सब मरते चाहे जहन्नुम में पड़ते, और उस पर तुर्रा यह है कि किसी को चाहे, कितना भी दुःखी देखें आप को कुछ घृणा तो आती ही नहीं। हाय हाय ! कैसे २ दुःखी लोग हैं—और मज़ा तो यह है कि सब धन बाइस पसेरी। चाहे आपके वास्ते दुःखी हो, चाहे अपने संसार के दुःख से आपको दोनों उल्लू फँसे हैं। इसी से तो "निर्दयहृदय कपाट" यह नाम है। भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया ? किस ने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था ? कुछ न होता तुम्हीं तुम रहते बस चैन था, केवल आनन्द था, फिर क्यौं यह विषमय संसार किया। बखेड़िये ! और इतने बड़े कारखाने पर बेहयाई परले सिरे की। नाम बिकै, लोग झूठा कहें, अपने मारे फिरें, आप भी अपने मुंह झूठे बनै, पर वाहरे शुद्ध बेहयाई और पूरी निर्लज्जता ! बेशरमी हो तो इतनी तो हो। क्या कहना है ! लाज को जूतों मार के पीट पीट के निकाल दिया है। जिस मुहल्ले में आप रहते हैं उस मुहल्ले में लाज की हवा भी नहीं जाती। जब ऐसे हो तब ऐसे हो। हाय ! एक बार भी मुंह दिखा दिया होता तो मतवाले मतवाले बने क्यों लड़ लड़ कर सिर फोरते। अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो, काहे को ऐसे बेशरम मिलेंगे, हुकमी बेहया हौ, कितनी गाली दूं, बड़े भारी पूरे हो, शरमाओगे थोड़े ही

कि माथा खाली करना सुफल हो। जाने दो—हम भी तो वैसेही निर्लज्ज और झूठी हैं, क्यों न हों। जस दूलह तस बनी बराता। पर इस में भी मूल उपद्रव तुम्हारा ही है, पर यह जान रखना कि इतना और कोई न कहैगा, क्योंकि सिफ़ारशी नेति नेति कहेंगे, सच्ची थोड़े ही कहेंगे। पर यह तो कहो कि यह दुःखमय पचड़ा ऐसा ही फैला रहैगा कि कुछ तै भी होगा वा न तै होय। हम को क्या ? पर हमारा तो पचड़ा छुड़ाओ। हाय मैं किस से कहती हूं। कोई सुनने-वाला है। जंगल में मोर नाचा किस ने देखा। नहीं नहीं, वह सब देखता है, वा देखता होता तो अब तक न मेरी खबर लेता। पत्थर होता तो वह भी पसीजता। नहीं नहीं, मैं ने प्यारे को इतना दोष व्यर्थ दिया। प्यारे, तुम्हारा दोष कुछ नहीं। यह सब मेरे कर्म्म का दोष है। नाथ, मैं तो तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूं। प्यारे क्षमा करो। मेरे अपराधों की ओर न देखो, अपनी ओर देखो (रोती है)।

मा० ।—हाय हाय सखियो ! यह तो रोय रही है।

का० मं० ।—सखी प्यारी रोवै मती। सखी तोहि मेरे सिर की सौंह जो रोवै।

मा० ।—सखी, मैं तेरे हाथ जोड़ूं मत रोवै। सखी हम सबन को जीव भर्यो आवै है।

बि० ।—सखी, जो तू कहैगी हम सब करैंगी। हम भले ही

प्रिया जी की रिस सहैंगी, पर तो सूं हम सब काहू बात सों बाहर नहीं।

मा० ।—हाय हाय यह तो मानै ही नहीं (आंसू पोंछ कर) मेरी प्यारी, मैं हाथ जोड़ूं हा हा खाऊं मानि जा।

का० मं० ।—सखी यासों मति कछू कहौ। आओ हम सब मिलि कै बिचार करैं जासों याको काम होय।

बि० ।—सखी, हमारे तो प्राणताईं यापैं निछावर है पर जो कछू उपाय सूझै।

चं० ।—(रो कर) सखी, एक उपाय मुझे सूझा है जो तुम मानो।

मा० ।—सखी, क्यों न मानैगी तू कहै क्यौं नहीं।

चं० ।—सखी, मुझे यहां अकेली छोड़ जाओ।

मा० ।—तो तू अकेली यहां का करेगी?

चं० ।—जो मेरी इच्छा होगी।

मा० ।—भलो तेरी इच्छा का होयगी हमहूं सुनैं?

चं० ।—सखी, वह उपाय कहा नहीं जाता।

मा० । तौ का अपनो प्रान देगी। सखी, हम ऐसी भोरी नहीं हैं कै तोहि अकेली छोड़ जायंगी।

बि० ।—सखी, तू व्यर्थ प्राण देन को मनोरथ करै है तेरे प्राण तोहि न छोड़ैंगे। जौ प्राण तोहि छोड़ जायंगे तो इन कों ऐसो सुन्दर शरीर फिर कहां मिलैगो।

का०मं० ।—सखी, ऐसी बात हम सूं मति कहै, और जो कहै सो २ हम करिबे कों तयार हैं, और या बात को ध्यान

तू सपने हू मैं मति करि । जब ताईं हमारे प्राण हैं तब ताईं तोहि न मरन देंयगी । पीछे भलेंई जो होय सो होय ।

चं० ।—(रो कर) हा ! मरने भी नहीं पाती । यह अन्याय !

मा० ।—सखी, अन्याय नहीं, यही न्याय है ।

का० मं० ।—जान दै माधवी वासों मति कछू पूछै । आओ हम तुम मिल कै सल्लाह करैं अब का करनो चाहिए ।

बि० ।—हां माधवी तू ही चतुर है तू ही उपाय सोच ।

मा० ।—सखी, मेरे जी में तौ एक बात आवै है । हम तीनि हैं सो तीनि काम बांटि लें । प्यारी जू के मनाइबे को मेरो जिम्मा । यही काम सब में कठिन है और तुम दोउन मैं सों एक याके घरकेन सों याकी सफाई करावै और एक लाल जू सों मिलिबे की कहै ।

का० मं० ।—लाल जी सों मैं कहूंगी । मैं विन्ने बहुती लजाऊंगी और जैसे होयगो वैसे यासों मिलाऊंगी ।

मा० ।—सखी, वेऊ का करैं । प्रिया जी के डर सों कछू नहीं कर सकैं ।

बि० ।—सो प्रिया जी को जिम्मा तेरो हुई है ।

मा० ।—हां हां प्रिया जी को जिम्मा मेरो ।

बि० ।—तौ याके घर को मेरो ।

मा० ।—भयो फेर का । सखी काहू बात को सोच मति करै । उठि ।

चं० ।—सखियो ! व्यर्थ क्यों यत्न करती हौ । मेरे भाग्य ऐसे नहीं हैं कि कोई काम सिद्ध हो ।

मा० ।—सखी हमारे भाग्य तो सीधे हैं । हम अपने भाग्यबल सों सब काम करैंगी ।

का० मं० ।—सखी, तू व्यर्थ क्यों उदास भई जाय है । जब तक सांसा तब तक आसा ।

मा० ।— तौ सखी बस अब यह सलाह पक्की भई । जब ताईं काम सिद्ध न होय तब ताईं काहुवै खबर न परै ।

वि० ।—नहीं, खबर कैसे परैगी ?

का० मं० ।—(चन्द्रावली का हाथ पकड़ कर) लै सखी, अब उठि । चलि हिंडोरें भूलि ।

मा० ।—हां सखी, अब तौ अनमनोपन छोड़ि ।

चं० ।—सखी, छूटा ही सा है, पर मैं हिंडोरे न भूलूंगी । मेरे तो नेत्र आप ही हिंडोरे भूला करते हैं ।

पल पटुली पै डोर प्रेम की लगाय चारु
आसा ही के खंभ दोय गाढ़ कै धरत हैं ।
भूमका ललित काम पूरन उछाह भरयो
लोक बदनामी भूमिभालर भरत हैं ॥
हरीचन्द आंसू दृग नीर बरसाइ प्यारे
पिया गुन गान सो मलार उचरत हैं ।
मिलन मनोरथ के भोंटन बढ़ाइ सदा
बिरह हिंडोरे नैन भूल्योई करत हैं ॥

और सखी मेरा जी हिंडोरे पर उदास होगा।

मा० ।—तौ सखी तेरी जो प्रसन्नता होय ! हम तौ तेरे सुख की गांहक हैं।

चं० ।—हां ! इन बादलों को देख कर तो और भी जी दुखी होता है। -

देखि घन स्याम घनस्याम की सुरतिकरि
जिय मैं बिरह घटा घहरि घहरि उठै।
त्यौंहीं इन्द्रधनु बगमाल देखि बन माल
मोतीलर पी की जिय लहरि लहरि उठै॥
हरीचन्द मोर पिक धुनि सुनि वंसीनाद
बांकी छबि बार बार छहरि २ उठै।
देखि देखि दामिनि की दुगुन दमक पीत
पट छोरे मेरे हिय फहरि फहरि उठै॥

हाय ! जो बरसात संसार को सुखद है वह मुझे इतनी दुखदाई हो रही है।

मा० । तौ न दुखदायिनी होयगी। चल उठ घर चलि।

का० मं० ।—हां चलि !

(सब जाती हैं)

॥ जवनिका गिरती है ॥

मुद्राराक्षस

पंचम अंक

(हाथ में मोहर, गहिने की पेटी और पत्र लेकर सिद्धार्थ आता है)

सिद्धार्थक ।—अहाहा !

देशकाल के कलश से, सिंची बुद्धि जल जौन ।
लता नीति चाणक्य की, बहु फल दैहै तौन ॥

अमात्य राक्षस के मोहर का, आर्य्य चाणक्य का लिखा हुआ यह लेख और मोहर तथा यह आभूषण की पेटिका लेकर मैं पटने जाता हूं (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे ! यह क्या क्षपणक आता है ? हाय हाय ! यह तो बुरा असगुन हुआ । तो मैं सूरज को देख कर इस का दोष छुड़ा लूं ।

(क्षपणक आता है)

क्षपणक ।—नमो नमो अर्हन्त कों, जो निज बुद्धि प्रताप ।
लोकोत्तर की सिद्धि सब, करत हस्तगत आप ॥

सिद्धार्थक ।—भदन्त ! प्रणाम ।

क्षपणक ।—उपासक ! धर्म्म लाभ हो (भली भांति देख कर) आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग कर रक्खा है ।

सिद्धार्थक ।—भदन्त ! तुम ने कैसे जाना ?

क्षपणक ।—इस में छिपी कौन बात है ? जैसे समुद्र में नाव पर सब के आगे मार्ग दिखानेवाला मांझी रहता है, वैसे ही तेरे हाथ में यह लखौटा है ।

सिद्धार्थक।—अजी भदन्त! भला यह तुम ने ठीक जाना कि मैं परदेश जाता हूं, पर यह कहो कि आज दिन कैसा है?

क्षपणक।—(हंस कर) वाह श्रावक वाह! तुम मूंड़ मुड़ा कर भी नक्षत्र पूछते हो?

सिद्धार्थक।—भला अब क्या बिगड़ा है? कहते क्यों नहीं। दिन अच्छा होगा जायंगे, न अच्छा होगा फिर आवैंगे।

क्षपणक।—चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो, मलयकेतु के कटक से बिना मोहर भए कोई जाने नहीं पाता।

सिद्धार्थक।—यह नियम कब से हुआ?

क्षपणक।—सुनो, पहिले तो कुछ भी रोक टोक नहीं थी, पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाय न आवै। इस से जो तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो, क्योंकि पीछे से तुम्हें हाथ पैर न बंधवाना पड़ै।

सिद्धार्थक।—क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के अन्तरङ्ग खेलाड़ी मित्र हैं? हमैं कौन रोक सकता है?

क्षपणक।—चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओगे।

सिद्धार्थक।—भदन्त! आप क्रोध मत करो, कहो कि काम सिद्ध हो।

क्षपणक।—जाओ काम सिद्ध होगा, हम भी पटने जाने के हेतु मलयकेतु से मोहर लेने जाते हैं।

(दोनों जाते हैं) ॥ इति प्रवेशक ॥

(भागुरायण और सेवक आते हैं)

भागुरायण।—(आप ही आप) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है।

कहूं विरल कहुं सघन कहुं, विफल कहूं फलवान।
कहुं कृस, कहुं अति थूल कछु, भेद परत नहिं जान॥
कहूं गुप्त अति ही रहत, कबहूं प्रगट लखात।
कठिन नीति चाणक्य की, भेद न जान्यो जात॥

(प्रगट) भासुरक! मलयकेतु से मुझे क्षण भर भी दूर रहने में दुःख होता है इस से यहीं बिछौना बिछा तो बैठें।

सेवक।—जो आज्ञा—बिछौना बिछा है, विराजिए।

भागुरायण।—(आसन पर बैठ कर) भासुरक! बाहर कोई मुझ से मिलने आवे तो आने देना।

सेवक।—जो आज्ञा (जाता है)।

भागुरायण।—(आप ही आप करुणा से) राम राम! मलयकेतु तो मुझ से इतना प्रेम करता है, मैं उस का बिगाड़ किस तरह करूंगा? अथवा—

जस कुल तजि अपमान सहि, धन हित परबस होय।
जिन बेच्यो निज प्रान तन, सबै सकत करि सोय॥

(आगे आगे मलयकेतु और पीछे प्रतिहारी आते हैं)

मलयकेतु।—(आप ही आप) क्या करें राक्षस का चित्त मेरी ओर से कैसा है यह सोचते हैं तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते हैं, कुछ निर्णय नहीं होता।

नन्दवंश को जानि के, ताहि चन्द्र की चाह।
कै अपनायो जान निज, मेरो करत निबाह॥
को हित अनहित तासु को, यह नहि जान्यो जात।
तासों जिय सन्देह अति, भेद न कछू लखात॥

(प्रगट) बिजये! भागुरायण कहां हैं देख तो?

प्रतिहारी।—महाराज भागुरायण वह बैठे हुए आप की सेना के जाने वाले लोगों को राहखर्च और परवाना बांट रहे हैं।

मलयकेतु।—विजये! तुम दबे पांव से उधर से आओ, मैं पीछे जाकर मित्र भागुरायण की आंखें बन्द करता हूं।

प्रतिहारी।—जो आज्ञा।

(दोनों दबे पांव से चलते हैं और भासुरक आता है)

भासुरक।—(भागुरायण से) बाहर क्षपणक आया है, उस को परवाना चाहिए।

भागुरायण।—अच्छा, यहां भेज दो।

भासुरक।—जो आज्ञा (जाता है)।

(क्षपणक आता है)

क्षपणक।—श्रावक को धर्म लाभ हो!

भागुरायण।—(छल से उसकी ओर देखकर) यह तो राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है (प्रगट) भदन्त! तुम नगर में राक्षस के किसी काम से जाते होगे।

क्षपणक।—(कान पर हाथ रख कर) छी छी! हम से राक्षस वा पिशाच से क्या काम?

भागुरायण।—आज तुम से और मित्र से कुछ प्रेम कलह हुआ है, पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है ?

क्षपणक।--राक्षस ने कुछ अपराध नहीं किया है, अपराधी तो हम हैं।

भागुरायण।—ह ह ह ह ! भदन्त ! तुम्हारे इस कहने से तो मुझ को सुनने की और भी उत्कण्ठा होती है।

मलयकेतु।—(आप ही आप) मुझ को भी।

भागुरायण।—तो भदन्त ! कहते क्यों नहीं ?

क्षपणक।--तुम सुन के क्या करोगे ?

भागुरायण।--तो जाने दो, हमें कुछ आग्रह नहीं है, गुप्त हो तो मत कहो।

क्षपणक।—नहीं उपासक ! गुप्त ऐसा नहीं है, पर वह बहुत बुरी बात है।

भागुरायण।—तो जाओ, हम तुम को परवाना न देंगे।

क्षपणक।—(आप ही आप की भांति) जो यह इतना आग्रह करता है तो कह दें (प्रत्यक्ष) श्रावक ! निरुपाय हो कर कहना पड़ा। सुनो–मैं पहिले कुसुमपुर में रहता था, तब संयोग से मुझ से राक्षस से मित्रता हो गई, फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग करा के विचारे पर्वतेश्वर को मार डाला।

मलयकेतु।—(आंखों में पानी भर के) हाय हाय! राक्षस ने हमारे पिता को मारा, चाणक्य ने नहीं मारा। हा!

भागुरायण।—हां, तो फिर क्या हुआ?

क्षपणक।—फिर मुझे राक्षस का मित्र जान कर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझ को नगर से निकाल दिया; तब मैं राक्षस के यहां आया, पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझ को ऐसा काम करने कहता है जिस से मेरा प्राण जाय।

भागुरायण।—भदन्त! हम तो यह समझते हैं कि पहिले जो आधा राज देने कहा था, वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म्म किया, राक्षस ने नहीं किया।

क्षपणक।—(कान पर हाथ रख कर) कभी नहीं, चाणक्य तो विषकन्या का नाम भी नहीं जानता; यह घोर कर्म्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है।

भागुरायण।—हाय हाय! बड़े कष्ट की बात है। लो, मुहर तो तुम को देते हैं, पर कुमार को भी यह बात सुना दो।

मलयकेतु।—(आगे बढ़ कर)

सुन्यौ मित्र, श्रुति भेद कर, शत्रु कियौ जो हाल।
पिता मरन को मोहि दुख, दुगुन भयो यहि काल॥

क्षपणक।—(आप ही आप) मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन लिया तो मेरा काम हो गया। (जाता है)

मलयकेतु।—(दांत पीस कर ऊपर देख कर) अरे राक्षस!

जिन तोपै विश्वास करि, सौंप्यौ सब धन धाम।
ताहि मारि दुख दै सबन, सांचो किय निज नाम॥

भागुरायण।—(आप ही आप) आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि "अमात्य राक्षस के प्राण की सर्वथा रक्षा करना" इस से अब बात फेरैं। (प्रकाश) कुमार! इतना आवेग मत कीजिये। आप आसन पर बैठिए तो मैं कुछ निवेदन करूं।

मलयकेतु।—मित्र क्या कहते हो? कहो (बैठ जाता है)

भागुरायण।—कुमार! बात यह है कि अर्थशास्त्रवालों की मित्रता और शत्रुता अर्थ ही के अनुसार होती है, साधारण लोगों की भांति इच्छानुसार नहीं होती। उस समय सर्वार्थसिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था तब देव पर्व्वतेश्वर ही इस कार्य में कंटक थे तो उस कार्य्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं। आप देखिए—

मित्र शत्रु ह्वै जात हैं, शत्रु करहिं अति नेह।
अर्थ नीति बस लोग सब, बदलहिं मानहुं देह॥

इस से राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिये। और जब तक नन्दराज्य न मिलै तब तक उस पर प्रकट स्नेह ही रखना नीति सिद्ध है; राज मिलने पर कुमार जो चाहैंगे करैंगे।

मलयकेतु।—मित्र! ऐसा ही होगा। तुम ने बहुत ठीक सोचा है। इस समय इस के बध करने से प्रजागण उदास हो जायंगे और ऐसा होने से जय में भी सन्देह होगा।

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य।—कुमार की जय हो! कुमार के कटकद्वार के रक्षाधिकारी दीर्घचक्षु ने निवेदन किया है कि "मुद्रा लिये बिना एक पुरुष कुछ पत्र सहित पकड़ा गया है सो उस को एक बेर आप देख लें।"

भागुरायण।—अच्छा, उस को ले आओ।

पुरुष।—जो आज्ञा।

(जाता है और हाथ बंधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धार्थक।—(आप ही आप)

गुन पै रिझवत दोस सो, दूर बचावत जौन।
स्वामि भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन॥

पुरुष।—(हाथ जोड़ कर) कुमार! यही मनुष्य है।

भागुरायण।—(अच्छी तरह देख कर) यह क्या बाहर का मनुष्य है या यहीं किसी का नौकर है?

सिद्धार्थक।—मैं अमात्य राक्षस का पासवर्ती सेवक हूं।

भागुरायण।—तो तुम क्यों मुद्रा लिये बिना कटक के बाहर जाते थे?

सिद्धार्थक।—आर्य्य! काम की जल्दी से।

भागुरायण।—ऐसा कौन काम है जिस के आगे राजाज्ञा को भी कुछ मोल नहीं गिना?

सिद्धार्थक।—(भागुरायण के हाथ में लेख देता है)।

भागुरायण।—(लेख लेकर देख कर) कुमार! इस लेख पर अमात्य राक्षस की मुहर है।

मलयकेतु।—ऐसी तरह से खोल कर दो कि मुहर न टूटे।

भागुरायण।—(पत्र खोल कर मलयकेतु को देता है)।

मलयकेतु।—(पढ़ता है) स्वस्ति। यथा स्थान में कहीं से कोई किसी पुरुष विशेष को कहता है। हमारे विपक्ष को निराकरण कर के सच्चे मनुष्य ने सचाई दिखलाई। अब हमारे पहिले के रक्खे हुए हमारे हितकारी चरों को भी जो जो देने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना। यह लोग प्रसन्न होंगे तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भांति अपने उपकारी की सेवा करैंगे। सच्चे लोग कहीं नहीं भूलते तो भी हम स्मरण कराते हैं। इन में से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते हैं और कोई राज चाहते हैं। हम को सत्यवादी ने जो तीन अलङ्कार भेजे सो मिले। हम ने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना। और जबानी हमारे अत्यन्त प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुन लेना *।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! इस लेख का आशय क्या है?

भागुरायण।—भद्र सिद्धार्थक! यह लेख किस का है?

सिद्धार्थक।—आर्य्य! मैं नहीं जानता।

भागुरायण।—धूर्त! लेख लेकर जाता है और यह नहीं जानता कि किसने लिखा है, और संदेसा किस से कहैगा?

---

* यह वही लेख है जिस को चाणक्य ने शकटदास से धोखा देकर लिखवाया था और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर करके सिद्धार्थक को दिया था।

सिद्धार्थक।—(डरते हुए की भांति) आप से।

भागुरायण।—क्यौं रे! हम से?

सिद्धार्थक।—आप ने पकड़ लिया। हम कुछ नहीं जानते कि क्या बात है।

भागुरायण।—(क्रोध से) अब जानैगा। भद्र भासुरक! इस को बाहर ले जाकर जब तक यह सब कुछ न बतलावै तब तक खूब मारो।

पुरुष।—जो आज्ञा (सिद्धार्थक को बाहर ले कर जाता है और हाथ में एक पेटी लिए फिर आता है) आर्य्य! उस को मारने के समय उस के बगल में से यह मुहर की हुई पेटी गिर पड़ी।

भागुरायण।—(देख कर) कुमार! इस पर भी राक्षस की मुहर है।

मलयकेतु।—यही लेख अशून्य करने को होगी। इस की भी मुहर बचा कर हम को दिखलाओ।

भागुरायण।—(वही खोल कर दिखलाता है)।

मलयकेतु।—अरे! यह तो वही सब आभरण हैं जो हम ने राक्षस को भेजे थे *। निश्चय यह चन्द्रगुप्त को लिखा है।

---

* दूसरा अंक पढ़ने से यहां की सब कथा खुल जायगी। चाणक्य ने चालाकी कर के चन्द्रगुप्त से पर्व्वतेश्वर के आभरण का दान कराया था और अपने ही ब्राह्मणों को दिलवाया था। उन्हीं लोगों ने राक्षस के हाथ वह आभरण बेचे जिस के विषय में कि इस पत्र में लिखा है "हम को सत्यवादी ने तीन अलंकार भेजे सो मिले।" जिस में मलयकेतु

भागुरायण ।—कुमार ! अभी सब संशय मिट जाता है। भासुरक ! उस को और मारो ।

पुरुष ।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है *) आर्य्य ! हमने उसको बहुत मारा है। अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे ।

मलयकेतु ।—अच्छा, ले आओ ।

पुरुष ।—जो कुमार की आज्ञा (बाहर जा कर सिद्धार्थक को ले कर आता है) ।

सिद्धार्थक ।—(मलयकेतु के पैरों पर गिर कर) कुमार ! हम को अभय दान दीजिए ।

मलयकेतु ।—भद्र ! उठो शरणागत जन यहां सदा अभय हैं। तुम इस का वृत्तान्त कहो ।

सिद्धार्थक ।—(उठ कर) सुनिए। मुझ को अमात्य राक्षस ने यह पत्र दे कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा था ।

को विश्वास हो कि पर्व्वतेश्वर के आभरण राक्षस ने मोल नहीं लिए किन्तु चन्द्रगुप्त ने उस को भेजे और मलयकेतु ने कंचुकी के द्वारा जो आभरण राक्षस को भेजे थे वही इस पेटी में बन्द थे, जिस में मलयकेतु को सन्देह हो कि राक्षस इन आभरणों को चन्द्रगुप्त को भेजता है ।

* ऐसे अवसर पर नाटक खेलनेवालों को उचित है कि बाहर जाकर बहुत जल्द न चले आवैं, और वह जिस कार्य्य के हेतु गए हैं नेपथ्य में उसका अनुकरण करें। जैसा भासुरक को सिद्धार्थक के मारने के हेतु भेजा गया है तो उस को नेपथ्य में मारने का सा कुछ शब्द कर के तब फिर आना चाहिए।

मलयकेतु।—जबानी क्या कहने कहा था वह कहो।

सिद्धार्थक।—कुमार! मुझ को अमात्य राक्षस ने कहने कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्म्मा मलयाधिपति सिंहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष * सिंधु महाराजा सिन्धुसेन

---

* कश्मीर के राजा के विषय में मुद्राराक्षस के कवि को भ्रम हुआ है यह सम्भव होता है। राजतरंगिणी में कोई राजा पुष्कराक्ष नाम का नहीं है। जिस समय में पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त राज करता था उस समय कश्मीर में विजय जयेन्द्र सन्धिमान मेघवाहन और प्रवरसेन इन्हीं राजों के होने का सम्भव है। कनिंगहम, लेशन, विलसन इत्यादि विद्वानों के मत में सौ बरस के लगभग का अन्तर है, इसी से मैंने यहां कई राजों का सम्भव होना लिखा। इन राजाओं के जीवनइतिहास में पटने तक किसी का आना नहीं लिखा है और न चन्द्रगुप्त के काल की किसी घटना से उन से सम्बन्ध है। मेघाक्ष मेघवाहन को लिखा हो यह सम्भव हो सकता है। क्योंकि मेघवाहन पहले गान्धार देश का राजा था फिर कश्मीर का राजा हुआ। भ्रम से इस को पारसीकराज लिख दिया हो। या सिल्यूकस का शैलाक्ष अनुवाद कर के मेघाक्ष किया हो सन्धिमान और प्रवरसेन से सिन्धुसेन निकाला हो। भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमा पर उस समय सिकन्दर के मरने से बड़ा ही गड़बड़ था, इस से कुछ शुद्ध वृत्तान्त नहीं मिलता। सम्भव है कि कवि ने जो कुछ उस समय सुना लिख दिया। वा यह भी सम्भव है कि यह सब देश और नाम केवल काव्यकल्पना हो। इतिहासों से यह भी विदित होता है कि मेगास्थनिस (Megasthenes) नामक एक राजदूत सिल्यूकस का चन्द्रगुप्त की सभा में आया था। सम्भव है कि इसी का नाम मेघाक्ष लिखा हो। यदि शुद्ध राजतरंगिणी का हिसाब लीजिए तो एक दूसरी ही लड़ मिलती है। इस के मत से ६५३ बरस कलियुग बीते महाभारत का

और पारसीक पालक मेघाक्ष इन पांच राजाओं से आप से पूर्व्व में सन्धि हो चुकी है। इस में पहिले तीन तो मलयकेतु का राज चाहते हैं और बाकी दो खजाना और

युद्ध हुआ। फिर १०१ बरस में तीन गोनर्द हुए, अब ७५४ ग० क० समूवत हुआ। इस के पीछे १२६६ बरस के राजाओं का वृत्त नहीं मालूम। (२०२० ग० क०) इस समय के ८६७ वर्ष पीछे उत्पलाक्ष, हिरण्याक्ष और हिरण्यकुल इस नाम के राजा हुए। २७९० ग० क० के पास इन का राज आरम्भ हुआ और २८८७ ग० क० तक रहा। इस वर्ष गत कलि ४६८२ इस से चन्द्रगुप्त का समय २८०० ग० क० हुआ तो उत्पलाक्ष हिरण्य वा हिरण्याक्ष राजा राजतरंगिणी के मत से चन्द्रगुप्त के समय में थे। (राजतरंगिणी प्र० त० २८७ श्लोक से)।

"उत्पलाक्ष इति ख्यातिं पेशलाक्षतया गतः।
तत्सूनुस्त्रिंशतं सार्द्धान् वर्षाणामवशान्महीम्॥
तत्सूनुर्हिरण्याक्षः स्वनामांकपुरं व्यधात्।
क्ष्मां सप्तत्रिंशतंवर्षान्सप्तमासांश्च भुक्तवान्॥
हिरण्यकुलइत्यस्य हिरण्याक्षस्य चात्मजः।
षष्टिं षष्टिंच मुकुलस्तत्सूनुरभवत् समाः॥
अथम्लेच्छगणार्कीर्णे मंडले चंडचेष्टितः।" इत्यादि।

यह सम्बन्ध दो तीन बातों से पुष्ट होता है। एक तो यह स्पष्ट सम्भव है कि उत्पलाक्ष का पुष्कराक्ष हो गया हो। दूसरे उन्हीं लोगों के समय उस प्रान्त में म्लेच्छो का आना लिखा है। तीसरे इसी समय से गान्धार, बर्बर आदि देशों के लोगों का व्यवहार यहां प्रचलित हुआ। इन बातों से निश्चित होता है कि यही उत्पलाक्ष वा हिरण्याक्ष पुष्कराक्ष नाम से लिखा है, विरोध केवल इतना ही है कि राजतरंगिणी में चन्द्रगुप्त का वृत्तान्त नहीं है।

हाथी चाहते हैं। जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़ कर मुझ को प्रसन्न किया उसी तरह इन लोगों को प्रसन्न करना चाहिए। यही राज-सन्देश है।

मलयकेतु।—(आप ही आप) क्या चित्रवर्म्मादिक भी हमारे द्रोही हैं ? तभी राक्षस में उन लोगों की ऐसी प्रीति है। (प्रकाश) विजये ! हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते हैं।

प्रतिहारी।—जो आज्ञा (जाता है)।

(एक परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ चिन्ता की मुद्रा में एक पुरुष के साथ दिखलाई पड़ता है *)

राक्षस।—(आप ही आप) चन्द्रगुप्त की ओर के बहुत लोग हमारी सेना में भरती हो रहे हैं इस से हमारा मन शुद्ध नहीं है। क्यौंकि—

रहत साध्य तें अन्वित अरु बिलसत निज पच्छहिं।
सोई साधन साधक जो नहिं छुअत बिपच्छहिं॥

---

* इस पांचवें अंक में चार बेर दृश्य बदला है। पहिले प्रवेशक, फिर भागुरायण का प्रवेश और तीसरा यह राक्षस का प्रवेश, चौथा राक्षस का फिर मलयकेतु के पास जाना। नए नाटकों के अनुसार चार दृश्यों वा गर्भांकों में इस को बांट सकते हैं; यथा पहिला दृश्य राजमार्ग, दूसरा युद्ध के बीच में मार्ग, और तीसरा राक्षस का डेरा, चौथा मलयकेतु का डेरा।

जो पुनि आपु असिद्ध सपच्छ विपच्छहु में सम।
कछु कहु नहिं निज पच्छ माहिं जाको है संगम॥
नरपति ऐसे साधनन कों अनुचित अंगीकार करि।
सब भांति पराजित होत हैं बादी लौं बहुबिधि बिगरि * ॥

---

* न्यायशास्त्र में अनुमान के प्रकरण में किसी पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ बराबर रहते देख कर व्याप्तिज्ञान होता है कि जहां पहला पदार्थ रहता है वहां दूसरा अवश्य रहना होगा। जैसा रसोई के घर में अग्नि के साथ धुएं को बराबर देख कर व्याप्तिज्ञान होता है कि जहां धुआं होगा वहां अग्नि भी अवश्य होगी। इसी भांति और कहीं भी यदि दूसरे पदार्थ को देखो तो पहले पदार्थ का ज्ञान होता है कि वहां भी अग्नि अवश्य होगी। इसी को अनुमिति कहते हैं। जिस की वाद में सिद्धि करना हो उस को साध्य कहते हैं, जैसे अग्नि। जिस के द्वारा सिद्ध हो उसे हेतु और साधन कहते हैं, जैसे धूम। जहां साध्य का रहना निश्चित हो वह सपक्ष कहलाता है, जैसे पाकशाला। जिस में अनुमिति से साध्य की सिद्धि करनी हो वह पक्ष कहलाता है जैसे पर्वत। जहां साध्य का निश्चय अभाव हो वह विपक्ष कहलाता है, जैसे जलाशय। यहां पर कवि ने अपनी न्यायशास्त्र की जानकारी का परिचय देने को यह छन्द बनाया है। जैसे न्यायशास्त्र में वाद करनेवाला पूर्वोक्त साधनादिकों को न जान कर स्वपक्ष स्थापन में असमर्थ हो कर हार जाता है, वैसे ही जो राजा (साधक) सेना आदि साधन से अन्वित है और अपने पक्ष को जानता है, विपक्ष से बचता है, वह जय पाता है। जो आप साध्यों (सेना नीति आदिकों) से हीन (असिद्ध) हैं और जिसको शत्रु मित्र का ज्ञान नहीं है और जो अपने पक्ष को नहीं समझता और अनुचित साधनों का [अर्थात् शत्रु से मिले हुए लोगों का]

वा जो लोग चन्द्रगुप्त से उदास हो गए हैं वही लोग इधर मिले हैं मैं व्यर्थ सोच करता हूं। (प्रगट) प्रियम्वदक! कुमार के अनुयायी राजा लोगों से हमारी ओर से कह दो कि अब अब कुसुमपुर दिन दिन पास आता जाता है, इस से सब लोग आप सेना अलग अलग कर के जो जहाँ नियुक्त हों वहाँ सावधानी से रहैं।

आगे खस अरु मगध चलैं जय ध्वजहि उड़ाए।
यवन और गंधार रहैं मधि सैन जमाए॥
चेदि हून सक राज लोग पीछे सो धावहिं।
कौलूतादिक नृपति कुमारहि घेरे आवहिं * ॥

अंगीकार करता है, वह हारता है। यह राक्षस ने इसी विचार पर कहा कि चन्द्रगुप्त के लोग इधर बहुत मिले हैं इससे हारने का सन्देह है [दर्शनों का थोड़ा सा वर्णन पाठकगण की जानकारी के हेतु पीछे किया जायगा]।

* खस हिमालय के उत्तर की एक जाति। कोई विद्वान् तिब्बत, कोई लद्दाख को खस देश मानते हैं। यवन शब्द से मुख्य तात्पर्य यूनान प्रान्त के देशों से है (Bactria, Lovia, Greek) परन्तु पश्चिम की विदेशी और अन्यधर्मी जाति मात्र को मुहाविरे में यवन कहते हैं। गान्धार जिसका अपभ्रंश कन्दहार है। चेदि देश बुन्देलखण्ड। कोई कोई चन्देरी के छोटे शहर को चेदि देश की राजधानी कहते हैं। हून देश योरोप के तत्काल के किसी असभ्य देश का नाम (Huns. Hungary) कोई विद्वान् मध्यएशिया में हून देश मानते हैं। शक को कोई विद्वान् तातार देश कहते हैं और कोई (Scythians) को शक कहते हैं।

प्रियम्वदक।—अमात्य की जो आज्ञा (जाता है)।

(प्रतिहारी आता है)

प्रतिहारी।—अमात्य की जय हो। कुमार अमात्य को देखना चाहते हैं।

कोई बलूचिस्तान के पास के देशों को शक देश मानते हैं। कौलूत देश के राजा चित्रवर्मादिक राक्षस के बड़े विश्वस्त थे इसी से कुमार की अंगरक्षा इनको दी थी। इन को राजाओं के नाम और देश का कुछ और पता मिलने को हम सिकन्दर के विजय की बड़ी बड़ी पुस्तकों को देखें। क्योंकि बहुत सी बातें जिन का पता इस देश की पुस्तकों से नहीं लगता विदेशी पुस्तकें उन को सहज में बतला देती हैं। इस हेतु यहां तीन अंगरेजी पुस्तकों से हम थोड़ा सा अनुवाद करते हैं—(1) Alexander the Great and his successors, (2) History of Greece, (3) Plutarch's lives of illustrious men V.II. "सिकन्दर के सिपाही लोग केवल ऋतु और थकावट ही से नहीं डरे किन्तु उन्हों ने यह भी सुना कि गंगा छ सौ फुट गहरी और चार मील चौड़ी है। Ganderites और Praisians के राजगण अस्सी हजार सवार दो लाख सिपाही, छ हजार हाथी और आठ हजार रथ सजे हुए सिकन्दर से लड़ने को तैयार हैं। इतनी सेना मगध देश में एकत्र होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं, क्यों कि ऐन्द्राकुतस (चन्द्रगुप्त) ने सिल्यूकस को एक ही बेर पांच सौ हाथी दिए थे और एक ही बेर छ लाख सेना लेकर सारा हिन्दुस्तान जीता था।" यह गान्दरिटस गान्धार और प्रेसिअन फारस प्रान्त के किसी देश का नाम होगा। हम को इन पांच राजाओं में कुलूत और मलय इन दो देशों की विशेष चिन्ता है, इस हेतु इन देशों का विशेष अन्वेषण कर के आगे लिखते हैं "एक बेर सिकन्दर (Malli) माल्लि वा मल्लि नामक भारत के विख्यात लड़नेवाली जाति से जब वह

राक्षस।—भद्र! क्षण भर ठहरो। बाहर कौन है?

(एक मनुष्य आता है)।

मनुष्य।—अमात्य! क्या आज्ञा है?

राक्षस।—भद्र! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हम को आभरण पहराया है तब से उन के सामने नंगे अंग जाना हम को उचित नहीं है। इस से जो तीन आभरण मोल लिये हैं उन में से एक भेज दें।

उन को जीतने को गया था मरते मरते बचा। जब सिकन्दर ने उन लोगों का दुर्ग घेर लिया और दीवार पर के लोगों को अपने शस्त्र से मार डाला तो साहस कर के अकेला दीवार पर चढ़ कर भीतर कूद पड़ा और वहां शत्रुओं से ऐसा घिर गया कि यदि उस के सिपाही साथ ही न पहुँचते तो वह टुकड़े २ हो जाता।" यह मल्ली देश ही मुद्राराक्षस का मलय देश है यह संभव होता है। यद्यपि अंगरेजी वाले यह देश कहां था इस का कुछ वर्णन नहीं करते किन्तु हिन्दुस्तान से लौटते समय यह देश उस को मिला था, इस से अनुमान होता है कि कहीं बलूचिस्तान के पास होगा। आगे चल कर फिर लिखते हैं "नदियों के मुहाने पर पहुंचने के पीछे उस को एक टापू मिला, जिस को उसने शिलोसतिस Scilloustis लिखा है पर आरियन (आर्य) लोग उस टापू को किलूता Cillutta कहते हैं!" क्या आश्चर्य है कि यही कुलूत हो। वह लोग यह भी लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने छोटेपन में सिकन्दर को देखा था और उस के विषय में उस ने यह अनुमति दी थी कि सिकन्दर यदि स्वभाव अपने वश में रखता तो सारी पृथ्वी जीतता। अब इन पुस्तकों से राजाओं के नाम भी कुछ मिलाइए। पर्व्वतेश्वर और बर्बर यह दोनों शब्द Barbarian बर्बेरियन के कैसे पास हैं। कश्मीरादि देश का राजा

मनुष्य।—जो अमात्य की आज्ञा। (बाहर जाता है आभरण लेकर आता है।) अमात्य ! अलंकार लीजिए।

राक्षस।—(अलंकार धारण कर के) भद्र ! राजकुल में जाने का मार्ग बतलाओ।

प्रतिहारी।—इधर से आइए।

राक्षस।—अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है।

सेवक प्रभु सों डरत सदाहीं। पराधीन सपने सुख नाहीं॥

जिस के पंजाब अति निकट है पुष्कराक्ष ग्रीक लोगों के पोरस शब्द के पास है। पुष्कराक्ष का पुसकरस और उस से पोरस हुआ हो तो क्या आश्चर्य है। प्युकेसतस वा पुसेतस (जो सिकन्दर के पीछे पारस का गवर्नर हुआ था) भी पुष्कराक्ष के पास है किन्तु यहां पारस का राजा मेघाक्ष लिखा है! इन राजाओं का ठीक ठीक ग्रीक नाम था जो देश उन का विशाखदत्त ने लिखा उस को यूनानवाले उस समय क्या कहते थे यह निर्णय करना बहुत कठिन है। संस्कृत के शब्द भी यूनानी में इतने बदल जाते हैं जिस का कुछ हिसाब नहीं। चन्द्रगुप्त का ऐन्ड्राकोत्तस वा सैन्ड्राकोटस, पाटलिपुत्र का पालीबोत्रा वा पालीभोत्तरा। तक्षक का तैक्साइल्स। यही बात यदि हम यूनानी शब्दों को संस्कृत के सादृश्यानुसार अनुवाद करें तो उपस्थित होगी। अलेकजैन्डर एलेकजेन्दर इत्यादि का फारसी सिकन्दर हुआ। हम यदि इन शब्दों को संस्कृत Sanskritised करें तो अलक्षेन्द्र वा लक्षेन्द्र वा श्रीकेन्द्र वा शिक्षेन्द्र इत्यादि शब्द होंगे। अब कहिए कहां के शब्द कहां जा पड़े; इसी से ठीक ठीक नामग्राम का निर्णय होना बहुत कठिन है। केवल शब्द विद्या के पण्डितों के कुतूहल के हेतु इतना भी लिखा गया।

जे ऊंचे पद के अधिकारी। तिन को मनहीं मन भय भारी ॥
सबही द्वेष बड़न सों करहीं। अनुछिन कान स्वामि को भरहीं ॥
जिमि जे जनमे ते मरैं, मिले अवसि बिलगाहिं।
तिमि जे अति ऊंचे चढ़ें, गिरिहैं संसय नाहिं ॥

प्रतिहारी।—(आगे बढ़ कर) अमात्य! कुमार यह बिराजते हैं आप जाइये।

राक्षस।—अरे, कुमार यह बैठे हैं।

लखत चरन की ओर हू, तऊ न देखत ताहि।
अचल दृष्टि इक ओर ही, रही बुद्धि अवगाहि ॥
कर पै धारि कपोल निज, लसत झुको अवनीस।
दुसह काज के भार सों, मनहु नमित भो सीस ॥

(* आगे बढ़ कर) कुमार की जय हो!

मलयकेतु।—आर्य्य। प्रणाम करता हूं। आसन पर बिराजिए।

राक्षस।—(बैठता है।)

मलयकेतु।—आर्य्य। बहुत दिनों से हम लोगों ने आप को नहीं देखा।

राक्षस।—कुमार! सेना को आगे बढ़ाने के प्रबन्ध में फंसने के कारण हम को यह उपालम्भ सुनना पड़ा।

मलयकेतु।—अमात्य! सेना के प्रयाण का आप ने क्या प्रबन्ध किया है? मैं भी सुनना चाहता हूं।

---

* यहीं पर चौथा दृश्य आरम्भ होता है।

राक्षस । कुमार ! आपके अनुयायी राजा लोगों को यह आज्ञा दी है (आगे खस अरु मगध इत्यादि छन्द पढ़ता है)।

मलयकेतु ।—(आप ही आप) हां, जाना; जो हमारे नाश करने के हेतु चन्द्रगुप्त से मिले हैं वही हमको घेरे रहेंगे (प्रकाश) आर्य्य, अब कुसुमपुर से कोई आता है या वहाँ जाता है कि नहीं ?

राक्षस ।—अब यहां किसी के आने जाने से क्या प्रयोजन ! पांच छ: दिन में हम लोग ही वहां पहुंचैंगे ।

मलयकेतु ।—(आप ही आप) अभी सब खुल जाता है (प्रगट) जो यही बात है तो इस मनुष्य को चिट्ठी लेकर आप ने कुसुमपुर क्यौं भेजा था ?

राक्षस ।—(देख कर) अरे ! सिद्धार्थक है ? भद्र ! यह क्या ?

सिद्धार्थक ।—(भय और लज्जा नाट्य कर के) अमात्य ! हम को क्षमा कीजिये । अमात्य ! हमारा कुछ भी दोष नहीं है मार खाते खाते हम आप का रहस्य छिपा न सके ।

राक्षस ।—भद्र ! वह कौन सा रहस्य है यह हम को नहीं समझ पड़ता ।

सिद्धार्थक ।—निवेदन करते हैं, मार खाने से, (इतना ही कह लज्जा से नीचा मुंह कर लेता है) ।

मलयकेतु ।—भागुरायण ! स्वामी के सामने लज्जा और भय

से यह कुछ न कह सकैगा; इस से तुम सब बात आर्य्य से कहो।

भागुरायण।—कुमार की जो आज्ञा। अमात्य! यह कहता है कि अमात्य राक्षस ने हम को चिट्ठी दे कर और संदेश कह कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस।—भद्र सिद्धार्थक! क्या यह सत्य है?

सिद्धार्थक।—(लज्जा नाट्य करके) मार खाने के डर से मैंने कह दिया।

राक्षस।—कुमार! मार की डर से लोग क्या नहीं कह देते?

मलयकेतु।—भागुरायण! चिट्ठी दिखला दो और संदेशा वह अपने मुंह से कहैगा।

भागुरायण।—(चिट्ठी खोल कर 'स्वस्ति कहीं से कोई किसी को' इत्यादि पढ़ता है।)

राक्षस।—कुमार! कुमार! यह सब शत्रु का प्रयोग है।

मलयकेतु।—लेख अशून्य करने को आर्य ने जो आभरण भेजे हैं वह शत्रु कैसे भेजैगा? (आभरण दिखलाता है)

राक्षस।—कुमार! यह मैं ने किसी को नहीं भेजा। कुमार ने यह मुझ को दिया और मैं ने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दिया।

भागुरायण।—अमात्य! ऐसे उत्तम आभरणों का विशेष कर अपने अङ्ग से उतार कर कुमार की दी हुई वस्तु का यह पात्र है?

मलयकेतु ।—और संदेश भी बड़े प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुनना—यह आर्य्य ने लिखा है ।

राक्षस ।—कैसा संदेश और कैसी चिट्ठी ? यह हमारा कुछ नहीं है !

मलयकेतु ।—तो मुहर किस की है ?

राक्षस ।—धूर्त्त लोग कपटमुद्रा भी बना लेते हैं ।

भागुरायण ।—कुमार ! अमात्य सच कहते हैं ! सिद्धार्थक, यह चिट्ठी किस की लिखी है ?

सिद्धार्थक ।—(राक्षस का मुंह देख कर चुप रह जाता है) ।

भागुरायण ।—चुप मत रहो । जी कड़ा कर के कहो ।

सिद्धार्थक ।—आर्य ! शकटदास ने ।

राक्षस ।—शकटदास ने लिखा तो मानों मैंने ही लिखा ।

मलयकेतु ।—विजये ! शकटदास को हम देखा चाहते हैं ।

भागुरायण ।—(आप ही आप) आर्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नहीं करते । जो शकटदास आकर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है यह सब वृत्तान्त कह देगा तो मलयकेतु फिर बहक जायगा । (प्रकाश) कुमार ! शकटदास, अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करैंगे; इस से उन का कोई और लेख मंगाकर अक्षर मिला लिये जायं ।

मलयकेतु ।—विजये ! ऐसा ही करो ।

भागुरायण ।—और मुहर भी आवै ।

मलयकेतु ।—हां, यह भी ।

कंचुकी।—जो आज्ञा (बाहर जाता है और पत्र और मुहर लेकर आता है।) कुमार! यह शकटदास का लेख और मुहर है।

मलयकेतु।—(देख कर और अक्षर और मुहर की मिलान करके) आर्य! अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस।—(आप ही आप) अक्षर निःसन्देह मिलते हैं, किन्तु शकटदास हमारा मित्र है, इस हिसाब से नहीं मिलते, तो क्या शकटदास ही ने लिखा अथवा

पुत्र दार की याद करि, स्वामि भक्ति तजि देत।
छोड़ि अचल जस कों करत, चल धन सों जन हेत॥

या इसमें सन्देह ही क्या है?

मुद्रा ताके हाथ की, सिद्धार्थक हू मित्र।
ताही के कर को लिख्यौ, पत्रहु साधन चित्र॥
मिलिकै शत्रुन सों करन, भेद भूलि निज धर्म।
स्वामि विमुख शकटहि कियो, निश्चय यह खल कर्म

मलयकेतु।—आर्य! श्रीमान ने तीन आभरण भेजे, सो मिले, यह जो आप ने लिखा है सो उसी में का एक आभरण यह भी है? (राक्षस के पहने हुए आभरण को देख कर आप ही आप) क्या यह पिता के पहने हुए आभरण हैं? (प्रकाश) आर्य, यह आभरण आपने कहां से पाया?

राक्षस।—जौहरी से मोल लिया था।

मलयकेतु।—विजये! तुम इन आभरणों को पहचानती हो?

प्रतिहारी।—(देख कर और आंसू भर के) कुमार! हम सुगृहीत

नामधेय महाराज पर्व्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानैंगे ?

मलयकेतु।—(आँखों में आँसू भर के)

भूषण प्रिय ! भूषण सबै, कुल भूषण ! तुव अंग।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन सङ्ग॥

राक्षस।—(आप ही आप) ये पर्व्वतेश्वर के पहिने हुए आभरण हैं ? (प्रकाश) जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियों ने ही बेंचा है।

मलयकेतु।—आर्य ! पिता के पहने हुए आभरण और फिर चन्द्रगुप्त के हाथ पड़े हुए जोहरी बेंचैं, यह कभी हो नहीं सकता। अथवा हो सकता है।

अधिक लाभ के लोभ सों, क्रूर ! त्यागि सब नेह।
बदले इन आभरन के तुम बेंच्यो मम देह॥

राक्षस।—(आप ही आप) अरे ! यह दाव तो पूरा बैठ गया।

माम लेख नहीं यह किमि कहैं मुद्रा छुटी जब हाथ की।
विश्वास होत न शकट तजि है प्रीति कबहू नाथ की॥
पुनि बेचि हैं नृप चंद्र भूषण कौन यह पतियाइ है।
तासों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइ है॥

मलयकेतु।—आर्य ! हम यह पूछते हैं।

राक्षस।—जो आर्य हो उस से पूछो; हम अब पापकारी अनार्य हो गये हैं

मलयकेतु ।—स्वामि पुत्र तुव मौर्य हम, मित्र पुत्र सह हेत ।
पैहो उत वाको दियो, इत तुम हम कों देत ॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत तुम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीनो यह पाप ॥

राक्षस ।—(आंखों में आँसू भर के) कुमार ! इस का निर्णय तो आप ही ने कर दिया—

स्वामि पुत्र मम मौर्य तुम, मित्र पुत्र सह हेत ।
पैहैं उत वाको दियो, इत हम तुम कों देत ।
सचिवहु भे उत दास ही, इत हम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीनो यह पाप ॥

मलयकेतु ।—(चिट्ठी पेटी इत्यादि दिखला कर) यह सब क्या है ?

राक्षस ।—(आँखों में आँसू भर के) यह सब चाणक्य ने नहीं किया, दैव ने किया ।

निज प्रभु सों करि नेह जे भृत्य समर्पत देह ।
तिन सों अपुने सुत सरिस सदा निबाहत नेह ॥
ते गुण गाहक नृप सबै जिन मारे छन माहिं ।
ताही विधि को दोस यह औरन को कछु नाहिं ॥

मलयकेतु ।—(क्रोधपूर्वक) अनार्य ! अब तक छल किए जाते हौ कि यह सब दैव ने किया ।

विष कन्या दै पितु हत्यौ, प्रथम प्रीति उपजाय ।
अब रिपु सों मिलि हम सबन, बधन चहत ललचाय ॥

राक्षस ।—(दुःख से आप ही आप) हां ! यह और जले पर नमक

है। (प्रगट कानों पर हाथ रख कर) नारायण ! देव पर्वतेश्वर का कोई अपराध हम ने नहीं किया।

मलयकेतु।—फिर पिता को किसने मारा ?

राक्षस।—यह दैव से पूछो।

मलयकेतु।—दैव से पूछें, जीवसिद्धि क्षपणक से न पूछें ?

राक्षस।—(आप ही आप) क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है ! हाय ! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर लिया ?

मलयकेतु।—(क्रोध से) शिखरसेन सेनापति से कहो कि राक्षस से मिल कर चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करने को पांच राजे जो हमारा बुरा चाहते हैं उन में कौलूत चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद और कश्मीराधीश पुष्कराक्ष ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इन को भूमि ही में गाड़ दे: और सिन्धुराज सुषेण और पारसीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सेना चाहते हैं सो इन को हाथी ही के पैर के नीचे पिसवा दो।*

पुरुष।—जो कुमार की आज्ञा। (जाता है।)

मलयकेतु।—राक्षस ! हम मलयकेतु हैं, कुछ तुम से विश्वास-

---

* यही बात यथीनियन लोगों ने दारा से कही थी। Wilson कहते हैं कि चाणक्य की आज्ञा से ये सब राजे कैद कर लिये गए थे, मारे नहीं गए थे।

घाती राक्षस नहीं हैं * इस से तुम जाकर अच्छी तरह चन्द्रगुप्त का आश्रय करो।

चन्द्रगुप्त चाणक्य सों, मिलिए सुख सों आप।
हम तीनहुं को नासि हैं, जिमि त्रिबर्ग कहं पाप † ॥

भागुरायण।—कुमार! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिए। कुसुमपुर घेरने को हमारी सैना चढ़ चुकी है।

उड़िकै तियगन गंडजुगल कहं मलिन बनावति।
अलिकुल से कल अलकन निज कन धवल छुवावति॥
चपल तुरगखुर घात उठी घन घुमड़ि नवीनी।
सत्रु सीस पैं धूरि परै गजमद सों भीनी॥

(अपने भृत्यों के साथ मलयकेतु जाता है)

राक्षस।—(घबड़ा कर) हाय! हाय! चित्रवर्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए। हाय! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु को नहीं, मित्रों ही के नाश करने को होती है। अब हम मन्दभाग्य क्या करैं?

जाहि तपोवन, पै न मन, शांत होत, सह क्रोध।
प्रान देहिं? रिपु के जियत, यह नारिन को बोध॥
खींचि खड्ग कर पतंग सम, जाहिं अनल अरि पास।
पै या साहस होइ है, चन्दनदास बिनास॥

(सोचता हुआ जाता है)

पटाक्षेप।

---

* अर्थात् हम तुम्हारा प्राण नहीं मारते।

† जैसे धर्म, अर्थ, काम को पाप नाश कर देता है।

सत्यहरिश्चन्द्र

चौथा अङ्क ।

स्थान—दक्षिण श्मशान, नदी, पीपल का बड़ा पेड़, चिता, मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी इत्यादि ।

(कम्बल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिये राजा हरिश्चन्द्र दिखाई पड़ते हैं ।)

ह० ।—(लम्बी सांस लेकर) हाय अब जन्म भर यही दुख भोगना पड़ेगा ।

जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान ।
कफन खसोटी को करम, सब ही एक समान ॥

न जानें, विधाता का क्रोध इतने पर शान्त हुआ कि नहीं । बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है । दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पड़ा । हम क्या क्या सोचें ? अपनी अनाथ प्रजा को, या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चंडालपने को । हां ! बटुक के धक्के से गिर कर रोहिताश्व ने क्रोधभरी और रानी ने जाते समय करुणाभरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलती । (घबड़ाकर) हा देवी ! सूर्यकुल की बहू और चन्द्रकुल की बेटी हो कर तुम

बेची गईं और दासी बनीं। हा! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गूथ सकती थीं उन से बरतन कैसे मांजोगी? (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सम्हल कर) अथवा क्या हुआ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा।

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द।
राख्यो निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी? कोई पुन्यात्मा का मुरदा आया होगा। तो हम सावधान हो जायं (लट्ठ कन्धे पर रख कर फिरता हुआ) खबरदार! खबरदार!! बिना हम से कहे और बिना हमें आधा कफन दिये कोई संस्कार न करे (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा मे इधर उधर देखता फिरता है)। (नेपथ्य में कोलाहल सुन कर) हाय हाय! कैसा भयंकर श्मशान है! दूर से मण्डल बांध बांध कर चोंच बाए, डैना फैलाए, कंगालों की तरह मुर्दों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं और कैसा मांस नोच नोच कर आपुस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यन्त कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भांति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। उधर चिराइन फैलाती हुई चट चट करती चिताएं कैसी जल रही हैं, जिन में कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू या चरबी बहती है। आग का रंग मांस के सम्बन्ध से नीला पीला हो रहा है, ज्वाला घूम घूम कर निकलती है। आग कभी एक साथ धधक उठती है, कभी मन्द हो जाती है। धूंआं चारो ओर

छा रहा है। (आगे देख कर आदर से) अहा ! यह बीभत्स व्यापार भी बड़ाई के योग्य है। शव ! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो; अतएव कहा है—

"मरनो भलो बिदेश को, जहाँ न अपुनो कोय।
माटी खाय जनावरां, महा महोच्छव होय॥"

अहा ! देखो।

सिर पै बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनँद उर धारत॥
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि खोदि कै माँस उचारत।
स्वान आँगुरिन काटि काटि कै खान बिचारत॥
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद मढ्यो सब को हियो।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहँ दियो॥

अहा ! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है !

सोई मुख सोई उदर, सोई कर पद दोय।
भयो आजु कछु और ही. परसत जेहि नहिं कोय॥
हाड़ माँस लाला रकत, बसा तुचा सब सोय।
छिन्न भिन्न दुरगन्ध मय, मरे मनुस के होय॥
कादर जेहि लखिकै डरत, पण्डित पावत लाज।
अहो ! व्यर्थ संसार को, विषय बासना साज॥

अहा ! मरना भी क्या वस्तु है।

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यौ।
सोई अँग जेहि प्रिय करि जान्यौ॥

सोई भुज जे पिय गर डारें।
सोई भुज जिन नर बिक्रम पारें॥
सोई पद जिहि सेवक बन्दत।
सोई छबि जेहि देखि अनन्दत॥
सोइ रसना जहं अमृत बानी।
जेहि सुनि कै हिय नारि जुड़ानी॥
सोई हृदय जहं भाव अनेका।
सोई सिर जहं निज बच टेका॥
सोई छबि-मय अंग सुहाए।
आजु जीव बिनु धरनि सुवाए॥
कहां गई वह सुन्दर सोभा।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा॥
प्रानहुं ते बढ़ि जा कहं चाहत।
ता कहं आजु सबै मिलि दाहत॥
फूल बोझहू जिन न सहारे।
तिन पै बोझ काठ बहु डारे॥
सिर पीड़ा जिन की नहिं हेरी।
करत कपालक्रिया तिन केरी॥
छिन हूं जे न भये कहुं न्यारे।
तेऊ बन्धुगन छोड़ि सिधारे॥
जो दृगकोर महीप निहारत।
आजु काक तेहि भोज बिचारत॥

भुजबल जे नहिं भुवन समाए।
ते लखियत मुख कफन छिपाए॥
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे।
गने काल सब एकहि लेखे॥
सुभग कुरूप अमृत बिख साने।
आजु सबै इक भाव बिकाने॥
पुरु दधीच कोऊ अब नाहीं?
रहे नावहीं ग्रन्थन माँहीं॥

अहा! देखो वही सिर, जिस पर मंत्र से अभिषेक होता था, अभी नवरत्न का मुकुट रक्खा जाता था, जिस में इतना अभिमान था कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिस में बड़े २ राज जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में भी घिन करते हैं। (आगे देख कर) अरे यह श्मशान देवी है। अहा! कात्यायनी को भी कैसा बीभत्स उपचार प्यारा है? यह देखो! डोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ २ कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैंसों के गले के घंटे पीपल की डार में लटक रहे हैं, जिन में लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है। घंट के पानी से चारो ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खंभे में लोहू के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उस के खाने को कुत्ते और सियार लड़ २ कर कोलाहल मचा रहे हैं। (हाथ जोड़ कर)

"भगवति ! चंडि ! प्रेते ! प्रेतविमाने ! लसत्प्रेते ! प्रेतास्थि रौद्ररूपे ! प्रेताशिनि ! भैरवि ! नमस्ते" *

(नेपथ्य में) राजन् ! हम केवल चण्डालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। मांगो क्या वर मांगते हो ?

ह० ।—(सुन कर आश्चर्य से) भगवति ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिये।

(नेपथ्य में) साधु महाराज हरिश्चन्द्र साधु !

ह० ।—(ऊपर देख कर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक था, जो दो पहर तक अपना प्रचण्ड प्रताप क्षण २ बढ़ाता गया, जो गगनाङ्गन का दीपक और कालसर्प का सिखामनि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भांति अपना सब तेज गंवा कर देखो समुद्र में गिरा चाहता है। अथवा

सांझ सोई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है।
पच्छिन के बहु शब्दन के मिस जीव उचाटन मन्त्र कह्यो है॥
मद्य भरो नरखोपरी सो ससि को नव बिम्बहू धाइ गह्यो है।
दै बलि जीव पसू यह मत्त है काल कपालिक नाचि रह्यो है॥

---

* इस में प्रायः सब श्लोक आर्य क्षेमीश्वर के बनाए चंडकौशिक से उद्धृत किए गये हैं।

सूरज धूम बिना की चिता सोई अन्त में ले जल माहिं बहाई।
बोलैं घने तरु बैठि बिहङ्गम रोअत सो मनु लोग लोगाई॥
धूम अंधार कपाल निसाकर, हाड़ नछत्र लहू सी* ललाई।
आनंद हेतु निसाचर के यह काल समान सो सांझ बनाई॥

अहा! यह चारो ओर से पत्ती लोग कैसा शब्द करते हुए अपने अपने घोसलों की ओर चले आते हैं। वर्षा से नदी का भयङ्कर प्रवाह। सांझ होने से श्मशान के पीपल पर कौओं का एक संग अमंगल शब्द से कांव कांव करना और रात के आगम से एक सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अन्धकार बढ़ता ही जाता है। वर्षा के कारण इन श्मशानवासी मण्डूकों का टर टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।

रुरुआ चहुँ दिसि ररत डरत सुनि कै नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी॥
अन्धकार बस गिरत काक अरु चील करत रव।
गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव॥
रोअत सियार, गरजत नदी, स्वान भूंकि डर पावई।
संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई॥

इस समय यह चिता भी कैसी भयङ्कर मालूम पड़ती है। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आंच से हाथ

---

* प्राचीन काल में राज के अपराधी लोग श्मशान पर गला काट कर मारे जाते थे इसी से यहां श्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है।

पैर जल कर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिलकुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे ही छोड़ दिया है, किसी का मुंह जल जाने से दांत निकला हुआ भयंकर हो रहा है और कोई आग में ऐसा जल रहा है कि कहीं पता भी नहीं है। वाह रे शरीर! तेरी क्या क्या गति होती है!!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है, क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे उस को कीड़ों वा मछलियों से चुनवाना और सड़ाकर दुर्गन्धमय करना बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहेगा न दुर्गति होगी। हा! चलो आगे चलें। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर घूमता है)

(पिशाच और डाकिनीगण परस्पर आमोद करते
और गाते बजाते हुए आते हैं)

पि० और डा०।—हैं भूत प्रेत हम. डाइन हैं छमाछम,
हम सेवैं मसान शिव को भजैं बोलैं बम बम बम।
पि०।—हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ैंगे।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सब का फोड़ैंगे॥
डा०।—हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावैंगी॥
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावैंगी॥
सब।—हम नाचैं मिलकर थेई थेई थेई थेई कूदैं धम् धम् धम्। हैं भू०—
पि०।—हम काट काट कर शिर को गेंदा उछालैंगे।
हम खींच खींच कर चरबी पंशाखा बालैंगे॥

डा० ।—हम माँग में लाल लाल लोहू का सेंदुर लगावैंगी ।
हम नस के तागे चमड़े का लहंगा बनावैंगी ॥

सब ।—हम धजसे सज के बज के चलैंगे चमकैंगे चम चम चम ।

पि० ।—लोहू का मुंह से फर्र फर्र फुंहारा छोड़ैंगे ।
माला गले पहिरने को अंतड़ी को जोड़ैंगे ॥

डा० ।—हम लाद के औंधे मुरदे चौकी बनावैंगी ।
कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावगी ॥

सब ।—हम मुख से गावैंगे ढोल बजावैंगे ढम ढम ढम ढम ढम ।

(वैसे ही कूदते हुए एक ओर से चले जाते हैं)

ह० ।—(कौतुक से देख कर) पिशाचों की क्रीड़ा—कुतूहल भी देखने के योग्य है । अहा ! यह कैसे काले २ झाड़ू से सिर के बाल खड़े किये लंबे २ हाथ पैर बिकराल दांत लम्बी जीभ निकाले इधर उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानो भयानक रस की सेना मूर्तिमान हो कर यहां स्वच्छन्द बिहार कर रही है । हाय हाय ! इन का खेल और सहज व्योहार भी कैसा भयंकर है । कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लहू भर भर के पीता है, कोई सिर का गेंद बना खेलता है, कोई अंतड़ी निकाल गले में डाले है और चन्दन की भांति चरबी और लहू शरीर में पोत रहा है, एक दूसरे से मांस छीन कर ले भागता है, एक जलता मांस मारे तृष्णा के मुंह में रख लेता है पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू थू कर के थूक देता है, और दूसरा उसी को

फिर झट से खा जाता है। हा! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोच लाई है जिसे देखने को चारो ओर से सब भूतने एकत्र हो रहे हैं और सभों को इसका बड़ा कौतुक हो गया है! हंसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते और जलती लकड़ी और मुरदों के अंगों से लड़ते हैं और उनको ले ले कर नाचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो श्मशान के कुत्तों को पकड़ पकड़ कर खा जाते हैं। अहा! भगवान भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योगसाधना की है। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है) (ऊपर देख कर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अंधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता! चांडाल कुलकी भाँति श्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है! (स्मरण करके) हा! इस दुःख की दशा में भी हम से प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता। सच है—

"टूट टाट घर टपकत खाटयो टूट।
पिय कै बांह उसिसवा सुख के लूट॥"

बिधना ने इस दुख पर भी वियोग दिया। हा! यह वर्षा और यह दुख! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा, पर जिस ने सपने में भी दुःख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि! धीरज धरो धीरज धरो! तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ

सदा दुःख ही दुःख है। (उपर देख कर) पानी बरसने लगा। अरे! (धोयी भली भाँति ओढ़ कर) हम को तो यह वर्षा और श्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो—

चपला की चमक चहुंधा सों लगाई चिता चिनगी चिलक पटबीजना चलायों है। हेती बगमाल स्याम बादर सुभूमि कारी बीरबधू लहू बूंद भुव लपटायो॥ हरीचन्द नीर धार आंसू सी परत जहां दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है। दाहन बियोग दुखियान को मरे हू यह देखो पापी पावस मसान बनि आयो है। (कुछ देर तक चुप रहकर) कौन है? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिर कर)

इन्द्र काल हू सरिस जो, आयसु लांघै कोय।
यह प्रचण्ड भुजदंड मम, प्रतिभट ताको होय॥

अरे कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़ कर) कौन?

(नेपथ्य में) हम हैं।

ह० ।—अरे हमारी बात का यह उत्तर कौन देता है? चलें जहाँ से आवाज आई है वहाँ चलकर देखें। (आगे बढ़ कर नेपथ्य की ओर देख कर) अरे यह कौन है?

चिता भस्म सब अंग लगाए। अस्थि अभूषण बिबिध बनाए॥
हाथ मसान कपाल जगावत। को यह चल्यो रुद्र सम आवत॥

(कापालिक के बेष में धर्म आता है *)

---

* गेरुये वस्त्र का काछा काछे, गेरुआ कफनी पहिने, सिर के बाल खोले, सेंदुर का अर्द्धचन्द्र दिये, नगी तलवार गले में लटकती हुई, एक

धर्म।—अरे हम हैं।

वृत्ति अयाचित आत्म रति, करि जग के सुख त्याग।
फिरहिं मसान मसान हम, धारि अनन्द विराग॥

(आगे बढ़ कर महाराज हरिश्चन्द्र को देख कर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत।
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत॥
हमहीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी।
हमहीं इक संग जात तजत जब पितु सुत नारी॥
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥

(कुछ सोचकर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दुःख परम्परा अत्यन्त शोचनीय और इनके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं। अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है।

सहत बिबिध दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छाड़हीं, जे जग साँचे लोग।
बरु सूरज पच्छिम उगै, बिन्ध्य तरै जल माँहि।
सत्य बीर जन पै कबहुँ, निज बच टारत नाँहि॥

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुख को दुख सुख को सुख गिनते ही नहीं, चलें उन के पास चलें। (आगे बढ़कर और देखकर) अरे! यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं?

हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में, चिमटा, अंग में भभूत पोते, नशे से आँखें लाल, लाल फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहिने।

(प्रगट) महाराज ! कल्याण हो ।

ह० ।—(प्रणाम कर के) आइये योगिराज !

ध० ।—महाराज हम अर्थी हैं ।

ह० ।—(लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

ध० ।—महाराज ! आप लज्जा मत कीजिये । हम लोग योग बल से सब कुछ जानते हैं । आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने को बहुत हैं । चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुकों का कल्याण करता है ।

ह० ।—हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिये ।

ध० । **अंजन गुटिका पादुका, धातु भेद बैताल ।**
बज्र रसायन जोगिनी, मोहि सिद्ध यहि काल ॥ *

ह० ।—तो मुझे जो आज्ञा हो वह करूं ।

ध० ।—आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गए हैं पर विघ्न इस में बाधक होते हैं, सो विघ्नों का निवारण कर दीजिये ।

ह० ।—आप जानते हैं कि मैं पराया दास हूं इससे जिसमें मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूं ।

* अंजनसिद्धि से जमीन में गड़े खजाने देख पड़ते हैं । गुटिका मुंह में रखकर वा पादुका पहिन कर चाहे जहां अलक्ष्य चला जाय । धातुभेद से औषध मात्र सिद्ध होती हैं । बैताल बस में होकर यथेच्छ काम देता है । बज्र सिद्ध होने से जहां गिराओ वहां गिरता है । रसायम सिद्ध से चांदी सोना बनता है । जोगिनी सिद्ध होने से भूत भविष्य का वृत्तान्त कह देती है और सब इच्छा पूर्ण करती है । यही आठों सिद्ध हैं ।

ध० ।—(आप ही) राजन ! जिस दिन तुम्हारा धर्म जायगा उस दिन पृथ्वी किस के बल से ठहरेगी । (प्रत्यक्ष) महाराज ! इस में धर्म न जायगा, क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लंघन करते ही नहीं । सिद्धि का आकार इसी श्मशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूँ आप विघ्नों का निषेध कर दीजिये ।

(जाता है)

ह०—(ललकार कर) हटो रे हटो विघ्नो ! चारो ओर से तुम्हारा प्रचार हमने रोक दिया ।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज ! जो आज्ञा । आप से सत्यवीर की आज्ञा कौन लांघ सकता है ?

खुल्यो द्वार कल्यान को, सिद्ध जोग तप आज ।
निधि सिधि विद्या सब करहिं, अपुने मन को काज ॥

ह० ।—(हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया (विमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्या आती हैं) । *

म० वि०—महाराज हरिश्चन्द्र ! बधाई है । हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था, तब देवताओं

---

* ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में, पर स्त्री का शृंगार । खेलने में चित्रपट के द्वारा परदे के ऊपर इन को दिखलावैंगे और इनकी ओर से बोलनेवाला नेपथ्य से बोलेगा ।

ने माया से आप को स्वप्न में हमारा रोना सुना कर हमारा प्राण बचाया।

ह०।—(आप ही आप) अरे यही सृष्टि की उत्पन्न पालन और नाश करनेवाली महाविद्या हैं, जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रगट हाथ जोड़ कर) त्रिलोकविजयिनी महा-विद्याओं को नमस्कार है।

म० वि०।—महाराज ! हम लोग तो आप के बस में हैं। हमारा ग्रहण कीजिये।

ह०।—देवियो ! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि की वशवर्त्तिनी हो; उन्हों ने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

म० वि०।—धन्य महाराज ! धन्य, जो आज्ञा।

(जाती हैं)

(धर्म एक बेताल के सिर पर पिटारा रखवाए हुए आता है)

ध०।—महाराज का कल्याण हो; आप की कृपा से महानिधान * सिद्ध हुआ। आपको बधाई है। अब लीजिये इस रसेन्द्र को।

याही के परभाव सो, अमरदेव सम होइ।
जोगी जन बिहरहिं सदा, मेरु शिखर भय खोइ॥

ह०।—(प्रणाम कर के) महाराज ! दास धर्म के यह विरुद्ध है।

---

* महानिधान बुभुक्षित धातु भेदी पारा जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते हैं।

इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

ध०—(आश्चर्य से आप ही आप) वाहरे महानुभावता ! (प्रगट) तो इस से स्वर्ण बना कर आप अपना दास्य छुड़ा लें।

ह० ।—यह ठीक है पर मैं ने तो विनती किया न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना सत्व मात्र बेच चुका, इस से आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिये।

ध० ।—(आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र ! धन्य तुम्हारा धैर्य ! धन्य तुम्हारा विवेक ! और धन्य तुम्हारी महानुभावता ! या—

चलै मेरु बरु प्रलय जल, पवन झकोरन पाय।
पै बीरन के मन कबहुँ, चलहिं नाहिं ललचाय॥

तो हमें भी इसमें कौन हठ है (प्रत्यक्ष) बैताल ! जाओ, जो महाराज की आज्ञा है वह करो।

बै० ।—जो रावल जी की आज्ञा ! (जाता है)

ध० ।—महाराज ! ब्राह्ममुहूर्त्त निकट आया अब हम को भी आज्ञा हो।

ह० ।—योगिराज ! हम को भूल न जाइयेगा, कभी कभी स्मरण कीजियेगा।

ब० ।—महाराज ! बड़े बड़े देवता आप का स्मरण करते हैं और करेंगे, मैं क्या कहूं ।

(जाता है)

ह० ।—क्या रात बीत गई ! आज तो कोई भी मुर्दा नया नहीं आया । रात के साथ ही श्मशान भी शान्त हो चला, भगवान नित्य ही ऐसा करे ।

(नेपथ्य में घंटा नूपुरादि का शब्द सुन कर)

अरे ! यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ ?

(विमान पर अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारहो प्रयोग आदि देवता आते हैं)

ह० ।—(आश्चर्य से) अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न हो कर श्मशान पर एकत्र हो रहे हैं !

दे० ।—महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो । आपके अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूट कर स्वतन्त्र हो गए । अब हम आपके वश में हैं, जो आज्ञा हो करें । हम लोग अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारह प्रयोग सब आप के हाथ मे हैं ।

* साधारण देवी देवताओं के वेश में । अष्टसिद्धि यथा—अणिमा महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व । नवनिधि यथा—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नील और वर्चस् । बारह प्रयोग यथा मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन विद्वेषण और कामनाशन ये छ बुरे और स्तंभन, वशीकरण, आकर्षण, बन्दीमोचन कामपूरण और वाक्प्रसारण ये छ अच्छे । ये भी चित्रपट में दिखलाये जायंगे ।

ह० ।—(प्रणाम कर के) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ ।

दे० ।—(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे बिना ओर ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे । हमी लोगों की सिद्धि को बड़े २ योगी मुनि पच मरते हैं । पर तुम ने तृण की भांति हमारा त्याग करके जगत का कल्याण किया ।

ह० ।—आप लोग मेरे सिर आंखों पर हैं पर मैं क्या करूं, क्योंकि मैं पराधीन हूं । एक बात और भी निवेदन है । वह यह कि छः अच्छे प्रयोग की तो हमारे समय मे सद्यः सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलम्ब से हो ।

दे० ।—महाराज । जो आज्ञा । हम लोग जाते हैं । आज आप के सत्य ने शिव जी के कीलन * को भी शिथिल कर दिया । महाराज का कल्याण हो । (जाते हैं)

(नेपथ्य में इस भांति मानों राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनता)

(एक स्वर से) तो अप्सरा को भेजें ?

(दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख ! जिस को अष्टसिद्धि नवनिधियों ने नहीं डिगाया उस को अप्सरा क्या डिगावेंगी ?

---

* शिव जी ने साधनमात्र को कील दिया है जिसमें जल्दी न सिद्ध हों, सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इससे वह कालन भी शिव जी की इच्छापूर्वक उस समय दूर हो गया था क्योंकि यह भी तो एक सब से बड़ा विघ्न था ।

(एक स्वर से) तो अब अन्तिम उपाय किया जाय ?

(दूसरे स्वर से) हां, तक्षक को आज्ञा दें।

अब और कोई उपाय नहीं है।

ह० ।—अहा अरुण का उदय हुआ चाहता है। पूर्व दिशा ने अपना मुह लाल किया। (सांस ले कर)

"या चकई को भयो चित चीतो चितोति चहूं दिसि चाय सों नाची। ह्वै गई छीन कलाधर की कला जामिनी जोति मनो जम जाची॥ बोलत बैरी बिहंगम देव संजोगिन की भई संपति काची। लोहू पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिनि प्राची।"

हा। प्रिये। इन बरसातों की रात को तुम रो रो के बिताती होगी। हा। वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए, तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गये ?

जेहि सहसन परिचारिका, राखत हाथहिं हाथ।
सो तुम लोटत धूर मैं, दास बालकन साथ॥
जाकी आयसु जग नृपति, सुनतहि धारत सीस।
तेहि द्विज-बटु आज्ञा करत, अहह कठिन अति ईस॥
बिनु तन बेचे बिनु दिये, बिनु जग ज्ञान बिबेक।
दैव सर्प दंशित भए, भोगत कष्ट अनेक॥

(घबड़ा कर) नारायण ! नारायण ! मेरे मुख से क्या निकल गया ? देवता उस की रक्षा करें। (बांई आंख का फड़कना दिखा-कर) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यों हुआ ? (दहिनी

भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे और साथ ही यह मंगल शकुन भी ! न जानें क्या होनहार है ? वा अब क्या होनहार है ? जो होना था सो हो चुका । अब इस से बढ़ कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरण मात्र बाकी है । इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहिले ही शरीर छूटे, क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है पर बश क्या है ?

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र ! सावधान । यही अन्तिम परीक्षा है । तुम्हारे पुरखा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं । आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुख किसी को नहीं हुआ था । ऐसा न हो कि इन का सिर नीचा हो । अपने धैर्य का स्मरण करो ।

हा० ।—(घबड़ा कर ऊपर देख कर) अरे यह कौन है ? कुलगुरु भगवान सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं । (ऊपर) पितः मैं सावधान हूं, सब दुखों को फूल की माला की भांति ग्रहण करूंगा ।

(नेपथ्य में रोने की आवाज़ सुन पड़ती है)

ह० ।—अरे अब सवेरा होने के समय मुरदा आया । अथवा चांडालकुल का सदा कल्याण हो, हमें इस से क्या ?

(खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा ! हमें रोती छोड़ के कहां चले गए ! हाय ! हायरे !

ह० ।—अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इस को पुत्र का है। हाय हाय ! हम को भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और बीभत्स कर्म सौंपा है ! इस मे भी वस्त्र मांगना पड़ेगा।

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है)

शै० ।—(रोती हुई) हाय बेटा ! जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले ! हाय ! हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुम ने न देखा ! हाय ! हायरे ! अब हमारी कौन गति होगी। (रोती है)

ह० ।—हाय हाय ! इस के पति ने भी इस को छोड़ दिया है। हा ! इस तपस्विनी को निष्करुण बिधि ने बड़ा ही दुख दिया है।

शै० ।—(रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किस ने लूट लिया ! हाय मेरी बोलती चिड़िया कहां उड़ गई ! हाय अब मैं किस का मुंह देख के जीऊँगी ! हाय मेरी अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया ! हाय मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किस ने तोड़ डाला ! अरे बेटा तैं तो मरे पर भी सुन्दर लगता है ! हाय रे ! अरे बोलता क्यों नहीं ? बेटा जल्दी बोल, देख, मां कब की पुकार रही है ! बच्चा ! तू तो एक ही दफे पुकारने में दौड़ कर गले से लपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता ?

(शव को बार बार गले लगाती, देखती और चूमती है)

ह० ।—हाय हाय ! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता ।

शै० ।—(पागल की भांति) अरे यह क्या हो रहा है ? बेटा कहां गए हौ ? आओ जल्दी ! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगती है, यहां मुझ को कौन ले आया है रे ? बेटा जल्दी आओ । अरे क्या कहते हो, मैं गुरु को फूल लेने गया था, वहां काले सांप ने मुझे काट लिया ? हाय ! हाय रे !! अरे कहां काट लिया ? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को । अरे वह सांप कहां गया, हम को क्यों नहीं काटता ? काट रे काट, क्या उस सुकुंआर बच्चे ही पर बल दिखाना था ? हमैं काट । हाय ! हम को नहीं काटता । अरे यहां तो कोई सांप वांप नहीं है । मेरे लाल झूठ बोलना कब से सीखे ? हाय हाय ! मैं इतना पुकारती हूं और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा ! गुरुजी पुकार रहे हैं, उन के होम की बेला निकली जाती है । देखो, बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं । दो जल्दी उन को दूब और बेलपत्र ! हाय ! हम ने इतना पुकारा, तुम कुछ नहीं बोलते ! (ज़ोर से) बेटा सांझ भई, सब विद्यार्थी लोग घर फिर आये; तुम अब तक क्यों नहीं आये ? (आगे शव देख कर) हाय हाय रे ! अरे मेरे लाल को सांप ने सचमुच डंस लिया ! हाय लाल ! हाय मेरे आंखों के उंजियाले को कौन ले गया ! हाय मेरा बोलता हुआ

सुग्गा कहां उड़ गया ! बेटा ! अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया ! हाय मेरा बसा घर आज किस ने उजाड़ दिया ! हाय मेरी कोख में किस ने आग लगा दी ! हाय मेरा कलेजा किस ने निकाल लिया ! (चिल्ला चिल्ला कर रोती है) हाय लाल कहां गए ? अरे ! अब मैं किस का मुंह देख के जीऊंगी रे ? हाय ! अब मा कह के मुझ को कौन पुकारेगा ? अरे, आज किस बैरी की छाती ठंढी भई रे ? अरे, तेरे सुकुंआर अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई ! अरे बेटा ! आंख खोलो । हाय ! मैं सब बिपत तुम्हारा ही मुंह देख कर सहती थी, सो अब कैसे जीती रहूंगी । अरे लाल ! एक बेर तो बोलो ! (रोती है) ।

ह० ।—न जानें क्यों इस के रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है ।

शै० ।—(रोती हुई) हा नाथ ! अरे अपने गोद के खेलाये बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते ? हाय ! अरे तुम ने तो इस को हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना, सो हम ने इस की यह दशा कर दी । हाय ! अरे ऐसे समय में भी आ कर नहीं सहाय होते ? भला एक बेर लड़के का मुंह तो देख जाओ ! अरे, मैं अब किस के भरोसे जीऊंगी ?

ह० ।—हाय हाय ! इसकी बातों से तो प्राण मुंह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है । यहां से हट चलें (कुछ दूर हट कर उस की ओर देखता खड़ा हो जाता है) ।

शै० ।—(रोती हुई) हाय ! यह विपत्ति का समुद्र कहां से उमड़

पड़ा ! अरे छलिया मुझे छल कर कहां भाग गया। (देखकर) अरे आयुस की रेखा तो इतनी लम्बी है, फिर अभी से यह बज्र कहां से टूट पड़ा। अरे ऐसा सुन्दर मुंह, बड़ी २ आंख, लम्बी लम्बी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग ! हाय मरने के तुझ में कौन से लच्छन थे जो भगवान ने तुझे मार डाला ! हाय लाल ! अरे, बड़े २ जोतसी गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा, सो सब झूठ निकला ! हाय ! पोथी, पत्रा, पूजा, पाठ, दान, जप, होम, कुछ भी काम न आया ! हाय ! तुम्हारे बाप का कठिन पुन्य भी तुम्हारा सहाय न हुआ और तुम चल बसे ! हाय !

ह० ।—अरे, इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है। (शव को भली भांति देख कर) अरे, इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं ! हाय ! न जानें किस बड़े कुल का दीपक आज इस ने बुझाया है, और न जानें किस नगर को आज इस ने अनाथ किया है। हाय ! रोहिताश्व भी इतना बड़ा हुआ होगा। (बड़े सोच से) हाय हाय ! मेरे मुंह से क्या अमंगल निकल गया ! नारायण ! (सोचता है)

शै० ।—भगवान विश्वामित्र ! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हुए ! हाय !

ह० ।—(घबड़ा कर) हाय हाय ! यह क्या ? (भली भांति देखकर रोता हुआ) हाय ! अब तक मैं संदेह ही में पड़ा हूं ? अरे

मेरी आंखें कहाँ गई थीं जिन ने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना, और कान कहां गए थे जिन ने अब तक महारानी की बोली न सुनी ! हा पुत्र ! हा लाल ! हा सूर्यवंश के अंकुर ! हा हरिश्चन्द्र की विपति के एक मात्र अवलम्ब ! हाय ! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मां को छोड़ कर कहां गए ? अरे तुम्हारे कोमल अंगों को क्या हो गया ? तुम ने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे ? पुत्र ! स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझ से कहते, मैं अपने बाहु बल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुंचा देता ! अथवा अभिमान से क्या ? भगवान इसी अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र। (रोता है)

आह ! मुझ से बढ़कर और कौन मन्दभाग्य होगा ! राज्य गया, धन जन कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ । भला अब मैं रानी को क्या मुंह दिखाऊं ? निस्सन्देह मुझ से अधिक अभागी और कौन होगा ? न जानें हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं ? जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुःख न देखना पड़ता । हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले । निस्सन्देह मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूं। (रङ्गभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलयकाल आ गया ? नहीं, यह बड़ा भारी असगुन

हुआ है। इस का फल कुछ अच्छा नहीं वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा ? हा! न जानें किस अपराध से दैव इतना रूठा है । (रोता है) हा सूर्य्यकुल-आलबालप्रबाल! हा हरिश्चन्द्र-हृदयानन्द! हा शैब्यावलम्ब! हा वत्स रोहिताश्व! हा मातृ-पितृ-विपत्तिसहचर! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़ कर कहां गए! आज हम सच मुच चण्डाल हुए। लोग कहेंगे कि इस ने न जानें कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय! हम संसार को क्या मुंह दिखावेंगे? (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करें! हा निर्लज्ज प्राण! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते? हा वज्र-हृदय! इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता? अरे नेत्रो! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो? या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है। इस के पूर्व कि किसी से सामान हो, प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है (पेड़ के पास जाकर फांसी देने के योग्य डाल खोज कर उस में दुपट्टा बांधता है)। धर्म्म! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया, परन्तु न जानें किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना! (दुपट्टे की फांसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविन्द! गोविन्द! यह मैं ने क्या अनर्थ अधर्म विचारा! भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार

था कि मैं ने प्राणत्याग करना चाहा ! भगवान सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे । नारायण नारायण ! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ? हे सर्व्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! क्षमा करना दुख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, अब तो मैं चांडालकुल का दास हूं, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र ! चलूं, अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊँ, वा देखूं अब दुखिनी शैव्या क्या करती है ? (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है)

शै० ।— (पहली तरह बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूँ ! अब मैं किस का मुंह देख कर संसार में जीऊँगी ! हाय ! मैं आज से निपूती भई ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी ! हा ! नित्य सबेरे उठ कर अब मैं किस की चिन्ता करूंगी ! खाने के समय मेरी गोद में बैठ कर और मुझ से मांग मांग कर अब कौन खायगा ! मैं परोसी थाली सूनी देख कर कैसे प्राण रक्खूंगी (रोती है) ! हाय ! खेलता २ आकर मेरे गले से कौन लपट जायगा ! और मा मा कह कर तनक २ बातों पर कौन हठ करेगा ! हाय ! मैं अब किस को अपने आंचल से मुंह की धूल पोंछ कर गले लगाऊंगी और किस के अभिमान से विपत में भी फूली २ फिरूंगी ! (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूंगी ! (छाती पीट कर) हाय प्रान ! तुम अब भी क्यों नहीं निकले ? हाय ! मैं ऐसी स्वारथी हूं कि

आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती ! नहीं नहीं, अब मैं न जीऊंगी । या तो इस पेड़ में फांसी लगा कर मर जाऊंगी या गंगा में कूद पड़ूंगी (उन्मत्त की भांति उठ कर दौड़ना चाहती है)

ह० ।—(आड़ में से)

तनहिं बेंच दासी कहवाई ।
मरत स्वामि आयसु बिन पाई ॥
करुन अधर्म सोच जिय माहीं ।
"पराधीन सपने सुख नाहीं" ॥

शै० ।—(चौकन्नी होकर) अहा ! यह किस ने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया । सच है, मैं अब इस देह की कौन हूं जो मर सकूं ! हाय दैव ! तुझ से यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊं ? (कुछ धीरज धर के) तो चलूं छाती पर बज्र धर के अब लोक रीति करूं । (रोती और लकड़ी चुन कर चिता बनाती हुई) हाय ! जिन हाथों से ठोंक ठोंक कर रोज सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूंगी, जिस के मुंह में छाला पड़ने के भय से कभी मैं ने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे—(बहुत ही रोती है)

ह० ।—धन देवी, आखिर तो चन्द्र-सूर्यकुल की स्त्री हो, तुम न धीरज करोगी तो और कौन करेगा ।

शै० ।—(चिता बना कर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती और रोती है)

ह० ।—तो अब चलें उस से आधा कफन मांगें (आगे बढ़ कर और बलपूर्वक आंसुओं को रोक कर शैब्या से) महाभागे ! श्मशान-पति की आज्ञा है कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फुंकने न पावे सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो (कफन मांगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्प वृष्टि होती है।)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्य्यमहो सत्यमहो दानमहो बलम् ।
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्व्वं लोकोत्तरं कृतम् ॥

(दोनो आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै० ।—हाय ! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है ? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य है नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो ! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखंड है।

ह० ।—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) नारायण ! नारायण ! महाभागे ! ऐसा मत कहो, शास्त्र ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त होगा। अपना धर्म विचारो। लाओ मृतकम्बल हमें दो और अपना काम आरम्भ करो (हाथ फैलाता है)।

शै० ।—(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिन्ह देख कर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र ! इतने दिन तक कहां छिपे थे ? देखो अपने गोद

के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भांति मसान में पड़ा है (रोती है)।

ह० ।—प्रिये! धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है। देखो सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रख कर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हम को दो।

शै० ।—(रोती हुई) नाथ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आंचल फाड़ कर इसे लपेट लाई हूं, उस में से भी जो आधा दे दूंगी तो यह खुला रह जायगा। हाय! चक्रवर्त्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता! (बहुत रोती है)

ह० ।—(बलपूर्वक आंसुओं को रोक कर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी! रो मत। ऐसे समय में तो धीरज और धर्म रखना काम है। मैं जिस का दास हूं उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिये क्रिया मत करने दो। इस से मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझ कर तुम से इस का आधा कफन न लूं तो बड़ा अधर्म हो। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिये धर्म न छोड़ा उस का धर्म आध गज़ कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कुलगुरु भगवान सूर्य अपने बंश की यह दुर्दशा देख कर चित्त में उदास हों (हाथ फैलाता है)।

शै०—(रोती हुई) नाथ ! जो आज्ञा । (रोहिताश्व का मृतकम्बल फाड़ा चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छुटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है, नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय २ की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं, और भगवान नारायण प्रगट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं)

भ० । —बस महाराज बस ! धर्म और सत्य सब की परमावधि हो गई । देखो तुम्हारे पुण्यभय से पृथ्वी बारम्बार कांपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो । (नेत्रों से आंसू बहते हैं)

ह० ।—(साष्टांग दंडवत करके रोता हुआ गद्गद स्वर से) भगवान ! मेरे वास्ते आप ने परिश्रम किया ! कहां यह श्मशान भूमि कहां यह मर्त्यलोक, कहां मेरा मनुष्य शरीर, और कहां पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्दघन साक्षात् आप ! (प्रेम के आंसुओं से और गद्गद कंठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

भ० ।—(शैब्या से) पुत्री ! अब शोच मत कर । धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है (रोहिताश्व की ओर देखकर) वत्स रोहिताश्व ! उठो, देखो तुम्हारे माता पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं ।

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान को प्रणाम कर के मातापिता का मुंह देखने लगता है, आकाश में फिर पुष्पवृष्टि होती है)

ह० और शै० ।—(आश्चर्य, आनन्द, करुणा और प्रेम से कुछ कह

नहीं सकते, आंखों से आंसू बहते हैं और एकटक भगवान के मुखारविंद की ओर देखते हैं) (श्रीमहादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इन्द्र और विश्वामित्र आते हैं) *

सब।—धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य ! जो आप ने किया सो किसी ने न किया, न करेगा।

(राजा हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहिताश्व सब को प्रणाम करते हैं)

वि०।—महाराज ! यह केवल चन्द्र सूर्य तक आप की कीर्त्ति स्थिर रखने के हेतु मैं ने छल किया था सो क्षमा कीजिये और अपना राज्य लीजिये।

(हरिश्चन्द्र भगवान और धर्म का मुंह देखते हैं)

धर्म।—महाराज ! राज आप का है, इस का मैं साक्षी हूं, आप निस्सन्देह लीजिये।

सत्य।—ठीक है, जिस ने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज्य है।

श्रीमहादेव।—पुत्र हरिश्चन्द्र ! भगवान नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यन्त तुम ने पाया, तथापि मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारी कीर्त्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्त्ती होय।

---

* श्री महादेव, पार्वती और भैरव का ध्यान सब को विदित है। इन्द्र और विश्वामित्र का लिख चुके हैं। धर्म चतुर्भुज, श्याम रंग, पीताम्बर, दण्ड, पत्र और कमल हाथ में। सत्य, शुक्लवर्ण श्वेत वस्त्रा-भरण, नारायण के चारो शस्त्र हाथ में।

पा० ।—पुत्री शैव्या ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्त्ति स्वर्ग की स्त्रियां गावें। तुम्हारी पुत्रबधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करें।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भै० ।—और जो तुम्हारी कीर्त्ति कहे सुने और उस का अनुसरण करे उस को भैरवी यातना न हो।

इन्द्र ।—(राजा को आलिंगन कर के और हाथ जोड़ के) महाराज ! मुझे क्षमा कीजिये। यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ, स्वयं कौन कहे आप ने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिये, आप की रक्षा के हेतु श्री शिवजी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे, नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बेताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।

ह० ।—(गद्गद स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ानेवाला और कौन है ?

भै० ।—महाराज ! और भी जो इच्छा हो मांगो।

ह० ।—(प्रणाम कर के गद्गद स्वर से) प्रभु ! आप के दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आप की आज्ञानुसार यह बर

मांगता हूं कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुण्ठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

भै०।—एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग जीव मात्र सब परमधाम जायंगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायंगे, तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थित रहेगा। इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ कुछ और भी मांगो। मैं तुम्हें क्या २ दूं? क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका। तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुम को कुछ और बर दूं। तुम्हें बर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता।

ह०।—(हाथ जोड़ कर) भगवान! मुझे अब कौन इच्छा है। मैं और क्या बर मांगू। तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो—

"खल गनन सों सज्जन दुखी मत होइं, हरिपद रति रहै।
उपधर्म छूटै, सत्व निज भारत गहै, करदुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सब जग सुख लहै।
तजि ग्राम कविता सुकविजन की अमृतबानी सब कहै॥"

(पुष्पवृष्टि और बाजे की ध्वनि के साथ जवनिका गिरती है)

महाकवि कालिदास का चरित्र

राजा विक्रम की सभा में ९ रत्न थे, उनमें से एक कालिदास थे। कहते हैं कि लड़कपन में इसने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा,

केवल एक स्त्री के कारण इसे वह अनमोल विद्या का धन हाथ लगा। इसकी कथा यों प्रसिद्ध है, कि राजा शारदानन्द की लड़की विद्योत्तमा बड़ी पण्डिता थी। उसने यह प्रतिज्ञा की, कि जो मुझे शास्त्रार्थ में जीतेगा, उसी को व्याहूंगी। उस राजकुमारी के रूप, यौवन, विद्या की प्रशंसा सुन कर दूर दूर से पण्डित आते पर शास्त्रार्थ के समय उससे सब हार जाते थे। जब पण्डितों ने देखा कि यह लड़की किसी तरह वश में नहीं आती और सब को हरा देती है, तो मन में अत्यन्त लज्जित होकर सब ने एका किया, कि किसी ढब विद्योत्तमा का विवाह किसी ऐसे मूर्ख से करावें, जिस में वह जन्म भर अपने घमण्ड पर पछताती रहे। निदान वे लोग मूर्ख की खोज में निकले। जाते जाते देखा, कि एक आदमी पेड़ के ऊपर बैठा है, उसी को जड़ से काट रहा है। पण्डितों ने उसे महा-मूर्ख समझ कर बड़ी आव-भगत से नीचे बुलाया, और कहा कि चलो हम तुम्हारा व्याह राजा की लड़की से करा दें। पर खबरदार राजा की सभा में मुँह से कुछ भी बात न कहना जो बात करनी हो इशारों से बताना। निदान जब वह राजा की सभा में पहुँचा, जितने पण्डित वहाँ बैठे थे, सब ने उठ कर उसकी पूजा की, ऊँची जगह बैठने को दी और विद्योत्तमा से यों निवेदन किया कि ये वृहस्पति के समान विद्वान् हमारे गुरु, आपके व्याहने को आये हैं। परन्तु इन्होंने तप के लिये मौन साधन किया है। जो कुछ आपको शास्त्रार्थ करना हो, इशारों से कीजिए। निदान उस राजकुमारी ने इस आशय से, कि

ईश्वर एक है, एक उँगली उठाई। मूर्ख ने यह समझ कर कि धमकाने के लिये उँगली दिखाकर एक आँख फोड़ देने का इशारा करती है, अपनी दो उँगलियाँ दिखलाईं। पण्डितों ने उन दो उँगलियों के ऐसे अर्थ निकाले, कि उस राजकुमारी को हार माननी पड़ी और विवाह भी उसी समय हो गया। रात के समय जब दोनों का एकान्त हुआ, किसी तरफ़ एक ऊँट चिल्ला उठा। राजकन्या ने पूछा, कि यह क्या शोर है मूर्ख तो कोई भी शब्द शुद्ध नहीं बोल सकता था कह उठा उट्र चिल्लाता है और जब राजकुमारी ने दुहरा कर पूछा तब उट्र की जगह उस्ट्र कहने लगा, पर शुद्ध उष्ट्र का उच्चारण न कर सका। तब तो विद्योत्तमा को पंडितों की दग़ाबाज़ी मालूम हुई, और अपने धोखा खाने पर पछता कर फूट फूट कर रोने लगी। यह मूर्ख भी अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ, पहिले तो चाहा कि जान ही दे डालूँ पर फिर सोच समझ कर घर से निकल विद्या उपार्जन में परिश्रम करने लगा। और थोड़े ही दिनों में ऐसा पण्डित हो गया, जिसका नाम आज तक चला जाता है। जब वह मूर्ख पण्डित हो कर घर में आया, उस समय जैसा आनन्द विद्योत्तमा के मन को हुआ, लिखने से बाहर है। सच है, परिश्रम से सब कुछ हो सकता है।

कालिदास के समय घटखर्पर, वररुचि आदि और भी कवि थे !! कालिदास ने काव्य नाटकादि अनेक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे हैं। इन की काव्य रचना बहुत सादी, मधुर और विषया-

नुसारिणी है। अंगरेज़ लोग कालिदास को अपने शेक्सपियर से उपमा देते हैं। इसके समय में भवभूति नामक एक कवि था। कहते हैं कि उसकी विद्या कालिदास से अधिक थी। परन्तु कवित्वशक्ति कालिदास की सी न थी। भवभूति कालिदास के श्रेष्ठत्व को मानता था।

कालिदास सारस्वत ब्राह्मण था। उसको आखेट आदि खेलों की बड़ी चाह थी, उसने अपने ग्रन्थ में इस का वर्णन किया है, कि मनुष्य के शरीर पर ऐसे खेलों मे क्या क्या उपकारी परिणाम होते हैं।

विक्रमादित्य ने उसको कश्मीर का राजा बनाया और यह राज्य उसने चार वर्ष नौ महीने किया।

कालिदास उज्जैन में रहता था परन्तु उस की जन्मभूमि कश्मीर थी।

देशान्तर होने पर स्त्री के वियोग से जो जो दुःख उसने पाये, उनका बखान मेघदूत काव्य में लिखा है। कालिदास बड़ा चतुर पुरुष था, उसकी चतुराई की बहुत सी कहानियाँ हैं, और ये सब मनोरंजक हैं, जिनमें से कई एक ये हैं—

(१) भोजराजा को कविता पर बड़ी रुचि थी। जो कोई नया कवि उसके पास आता और कविता-चातुर्य दिखलाता उसको वह अच्छा पारितोषिक देता, और चाहता तो अपनी सभा में भी रख लेता था। इस प्रकार से यह कविमण्डल बहुत बढ़ गया। उसमें कई कवि तो ऐसे थे, कि वे एक बार कोई नया श्लोक सुन

लेते, तो उसे कण्ठ कर सकते थे। जब कोई नया मनुष्य राजा के पास आकर नया श्लोक सुनाता था, तो कहने लगते थे कि यह तो हमारा पहिले ही से जाना हुआ है और तुरन्त पढ़ कर सुना देते थे।

एक दिन कालिदास के पास एक कवि ने आकर कहा, कि महाराज आप यदि राजा के पास ले चलें और कुछ धन दिला देवें तो मुझ पर आपका बड़ा उपकार होगा। जो मैं कोई नया श्लोक बना कर राजसभा में सुनाऊँ तो उसका नूतन माना जाना कठिन है, इसलिए कोई युक्ति बताइए।

कालिदास ने कहा कि तुम श्लोक में ऐसा कहो कि राजा से मुझ को अपने रत्नों का हार लेना है, और जो कुछ मैं कहता हूँ सो यहाँ के कई पण्डितों को भी मालूम होगा। इस पर यदि पण्डित लोग कहें कि यह श्लोक पुराना है तो तुम को रत्नों का हार मिल जायगा, नहीं नये श्लोक का अच्छा पारितोषिक मिलेगा।

उस कवि ने कालिदास की बताई हुई युक्ति को मानकर वैसा ही श्लोक बनाया और जब उसको राजसभा में पढ़ा तो कविमण्डल चुपचाप हो रहा और उस कवि को बहुत सा धन मिला।

(२) एक समय कालिदास के पास एक मूढ़ ब्राह्मण आया और कहने लगा कि कविराज मैं अति दरिद्र हूँ, और मुझ में कुछ गुण भी नहीं है, मुझ पर आप कुछ उपकार करें तो भला होगा।

कालिदास ने कहा, अच्छा हम एक दिन तुम को राजा के पास ले चलेंगे आगे तुम्हारा प्रारब्ध। परन्तु रीति है कि जब

राजा के दर्शन के निमित्त जाते हैं तो कुछ भेंट ले जाया करते हैं इसलिए मैं जो ये सांटे के चार टुकड़े देता हूँ सो ले चल। ब्राह्मण घर लौटा और उन सांटे के टुकड़ों को उसने धोती में लपेट रक्खा। यह देख किसी ठग ने उसके बिना जाने उन टुकड़ों को निकाल लिया, और उनके बदले लकड़ी के उतने ही टुकड़े बाँध दिए।

राजा के दर्शन को चलने के समय ब्राह्मण ने सांटे के टुकड़ों को नहीं देखा, जब सभा में पहुँचा तब इस काठ को राजा को अपण किया। राजा उसको देखते ही बहुत क्रोधित हुआ उस समय कालिदास पास ही था, उसने कहा महाराज इस ब्राह्मण ने अपनी दरिद्ररूपी लकड़ी आप के पास लाकर रक्खी है इसलिए कि उसको जलाकर इस ब्राह्मण को आप सुखी करें। यह बात कवि के मुख से सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुआ, और उसने ब्राह्मण को बहुत धन दिया।

(३) एक समय राजा भोज कालिदास को साथ ले बन-क्रीड़ा के हेतु अरण्य को गये, और घूमते घूमते थके मांदे हो, एक नदी के किनारे जा बैठे। इस नदी में पत्थर बहुत थे, उन पर पानी गिरने से बड़ा शब्द होता था उस समय राजा ने कालिदास से विनोद करके पूछा कि कविराज यह नदी क्यों रोती है ? कालिदास ने उत्तर दिया कि महाराज यह छोटे ही पन में अपने मैके से ससुराल को जाती है।

कालिदास के प्रसिद्धग्रंथ शकुंतला, विक्रमोर्वशी, मालविका-

ग्निमित्र, और मेघदूत हैं। शकुंतला बहुत वर्णनीय ग्रंथ है। उसका उल्था यूरोप में सब देशों की भाषाओं में हो गया है।

एक समय कविवर कालिदास अपने मकान में बैठ कर अपने प्रिय पुत्र को अध्ययन कराता था, उसी समय क्षत्रियकुलभूषण शकारि विक्रमादित्य संयोग से आगए। कविवर कालिदास ने महाराज को देख प्रिय पुत्र का पढ़ाना छोड़कर शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया, जब क्षत्रियकुल भूषण महाराज विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने देश ही में मान पाता है और विद्वान का मान सब स्थानों में होता है। महाराज इस प्रकार की शिक्षा को सुन कर अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविवर कालिदास ऐसा अभिमानी पण्डित है कि मेरे ही सामने पण्डितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को वा मुझे नीचा दिखाता है। मैं पण्डितों का विशेष आदरमान करता हूँ और जो मेरे वा अन्य राजाओं वा धनवानों के यहाँ पण्डितों का आदर नहीं हो तो कहाँ हो सकता है? ऐसा कुतर्क करते हुए राजा अपने घर गए। महाराज विक्रमादित्य ने कविवर कालिदास को जो धन सम्पत्ति दी थी उसको हर लेने के लिए मंत्री को आज्ञा दी। मंत्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा था। कविवर कालिदास की जीविका जब हरली गई तब दुःखी होकर वह अपने बाल बच्चों के साथ अनेक देशों में भटकता

हुआ अंत में करनाटक देश में पहुँचा। करनाटक देशाधिपति बड़ा पण्डित और गुणग्राहक था। उसके पास जाकर कविवर कालिदास ने अपनी कविताशक्ति दिखाई। उस पर करनाटक देशाधिपति ने अति प्रसन्न हो कर बहुत सा धन और भूमि देकर उसको अपने राज्य में रक्खा। कविवर कालिदास राजा से सम्मान पाकर उस देश में रह कर प्रतिदिन राजसभा में जाने और वहाँ राजा के सिंहासन के पास ऊँचे आसन पर बैठ सब राजकाजों में उत्तम सम्मति देने लगा। और अनेक प्रकार की कविताओं से सभासदों के मन की कली खिलाता हुआ सुख से रहने लगा। जब से कविवर कालिदास को विक्रमादित्य ने छोड़ा तब से वे बड़े शोकसागर में डूबे थे। नवरत्नों में कविवर कालिदास ही अनमोल रत्न था, इसके सिवाय जब राजा को राजकाज के कामों से फुरसत मिलती थी तब केवल कविराज कालिदास ही की अद्भुत कविताओं को सुन कर राजा का मन प्रफुल्लित होता था। इसलिए ऐसे मनुष्य के बिना राजा का सब वस्तुओं से मन उदास होने लगा। फिर राजा ने कविराज कालिदास का पता लगाने के लिए सब देशों में दूतों को भेजा। जब कहीं पता न लगा तब राजा आप ही भेष बदल कर खोजने के लिए निकले। कई देशों में घूमते फिरते जब वह करनाटक देश में गए तो उस समय उन के पास पथ-व्यय के लिये एक हीरा जड़ी हुई अँगूठी को छोड़ और कुछ नहीं था। उस अँगूठी को बेचने के लिए वे किसी जौहरी की दूकान पर गए। रत्नपारखी ने ऐसे दरिद्र के

हाथ में ऐसी अनमोल रत्नजड़ित अँगूठी को देख कर मन में चोर समझा और कोतवाल के पास भेजा। कोतवाल राजसभा में ले गया। वे चारों ओर देखते भालते आगे बढ़े तो कविवर कालिदास को देखा और कहा महाराज मैंने जैसा किया वैसा ही फल पाया। कविवर कालिदास उठ कर राजा को अंक में लगा कर करनाटक देशाधिपति से परिचय करा और सब व्यौरा कह कर राजा वीर विक्रमादित्य के साथ चला आया।

पर इन कथाओं से भी वही झंझट पाई जाती है और कविवर कालिदास का समय ठीक निश्चय होना कठिन है।

कोई कोई कहते हैं कि कविवर कालिदास की सहायता से एक ब्राह्मण ने राजा भोज से एक श्लोक पर अनेक रुपया इस चतुराई से लिया था।

उज्जैन नगरी में राजा भोज ऐसा विद्यारसिक, गुणज्ञ और दानशील था कि विद्या की वृद्धि के प्रयोजन से उसने यह नियम प्रचलित किया था कि जो कोई नवीन आशय का श्लोक बना कर लावे उसको एक लाख रुपए दक्षिणा दी जाय। इस बात को सुन कर देश देशान्तर के पण्डित लोग नये आशय के श्लोक बना कर लाते थे, परन्तु उस की सभा में चार ऐसे पण्डित थे कि एक को एक बार, दूसरे को दो बार, तीसरे को तीन बार और चौथे को चार बार, सुनने से नया श्लोक कंठस्थ हो जाता था। सो जब कोई परदेशी पण्डित राजा की सभा में नवीन आशय

का श्लोक बना कर लाता तो वह राजा के सम्मुख पढ़ के सुनाता था; उस समय राजा अपने पण्डितों से पूछता था कि यह श्लोक नया है वा पुराना, तब वह मनुष्य जिसको कि एक बार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था कहता कि यह पुराने आशय का श्लोक है और आप भी पढ़ कर सुना देता था, इसके अनन्तर वह मनुष्य जिस को दो बार सुनने से कंठ हो जाता था पढ़ कर सुनाता, और इसी प्रकार वह मनुष्य जिस को तीन बार और वह भी जिसको चार बार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था, क्रम से सब राजा को कंठाग्र सुना देते; इस कारण परदेशी विद्वान् अपने मनोरथ से रहित हो जाते थे और इस बात की चर्चा देश देशांतर में फैली । परन्तु एक विद्वान ऐसा देशकाल में चतुर और बुद्धिमान निकला कि उसके बनाये हुए आशय को इन चार मनुष्यों को भी अंगीकार करना पड़ा और वह आशय यह है कि—हे तीनों लोक के जीतने वाले राजा भोज ! आप के पिता बड़े धर्मिष्ट हुए हैं, उन्होंने मुझ से निन्नानबे करोड़ का रत्न लिया है, सो मुझे आप दीजिए और इस वृतान्त को आप के सभासद विद्वान् जानते होंगे । उनसे पूछ लीजिए और जो वे कहें कि यह आशय केवल नवीन कविता मात्र है तो अपने प्रण के अनुसार एक लाख रुपया मुझे दीजिए । इस आशय को सुन कर चारों विद्वानों ने विचारांश किया कि जो इसको पुराना आशय ठहरावें तो महाराज को निन्नानवे करोड़ द्रव्य देना पड़ता है और नवीन कहने में केवल एक लाख, सो उन चारों ने क्रम

से यही कहा कि पृथ्वीनाथ ! यह नवीन आशय का श्लोक है, इस पर राजा ने उस विद्वान को एक लाख रुपया दिया।

सूर्य्योदय

देखो ! सूर्य्य का उदय हो गया। अहा ! इसकी शोभा इस समय ऐसी दिखाई पड़ती है मानो अन्धकार को जीतने को दिन ने यह गोला मारा है, अथवा प्रकाश का यह पिंड है वा आकाश का यह कोई बड़ा लाल कमल खिला है, वा लोगों के शुभाशुभ कर्म्म की खराद का यह चक्र है, अथवा चन्द्रमा के रथ का पहिया है, घिसने से लाल हो गया है, अथवा काल के निर्लेप होने की सौगन्द खाने का यह तपाया हुआ लोहे का गोला है, अथवा उस बड़े आतिशबाज़ का, जिसने रात को अद्भुत गंज सितारा छोड़ा था, वह दिन का गुब्बारा है वा यह एक लाल व्योमयान [बेलून] है जो समय को लिए इधर उधर फिरा करता है, वा संसारियों का दिन के काम पर जो अनुराग है यह उसका समूह है, वा पूर्व दिशा का माणिक्य का सीसफूल है, वा लाल खिलाड़ी का यह लाल पतंग है, वा समय रेल की आगमनसूचक यह आगे की लाल लालटेन है, वा उस बाजीगर का यह भी एक खेल है कि अधर में एक लाल झाड़ रौशन कर दिया है, वा काल रूपी यह कोई बड़ा गृद्ध है जो जगत् को खाता चला आता है, वा उस बड़े टकसाल की यह एक अशरफी है जो

चन्द्रमा ऐसे रुपये से भी दाम में सोलहगुनी है, वा समय रूपी चलान की पेटी पर यह लाह की मोहर है, वा आकाशरूपी दिगम्बर का भी मांगने का यह ताम्बे का कटोरा है, वा अंधेरे से लड़ने वाले चन्द्रमा वीर की यह खून भरी ढाल है, वा ज्योतिषियों की बुद्धि की घुड़दौड़ का सीमाचिन्ह है, वा वे कितना भी गिना किये हाथ कुछ न लगा उसीकी यह विन्दु है, वा रात दिन के तौलने का तराजू का पलड़ा है, वा मजीठ का कुंड है, वा लाल पत्थर का गुम्मज है वा काल का चक्र है, वा बेलालता का यह पक्की मिट्टी का थावला है, वा जगत् के सिर का छत्र है, वा काल महाराज की सूरजमुखी है, वा संसार के सिर की वह लट्टूदार पगड़ी है, वा उस हठीले बालक के खेल का यह चकई है, जो उसकी आज्ञा रूपी डोर पर ऊंची नीची हुआ करती है, वा जगत् को जगाने का नगाड़ा है, वा सब के उठते शकुन होने को यह सामने दिशा की लाल हथेली है, या उस कर्म्मकाण्डी का यह अग्निकुण्ड है जिसमें नित्य वह जगत् की आयु होम करता है, वा उस मंगलमूर्त्ति की यह मंगला आरती है, वा उस दरबार के गरज देने की यह घड़ी है, वा कोई लाल आरसी सामने खड़ी है, वा उस परम प्रकाशित भवन का एक मोखा है, वा आकाश सरोवर का यह लाल कछुवा है, वा किरणों की जाल फैलाने वाला कोई मधुवा है, जगत् को मृगतृष्णा भ्रम के जादू में फँसाने का छूमन्तर का पिटारा है, वा उस कबूतरबाज़ का सुरखा लक्का कबूतर है, वा संवत् जलाने वाली होली है, वा संसार का सिरमौर

है, वा जगत् पर दयाल के अपार अनुराग का यह एक किनका है, या लोगों के बुरे भले कामों के लाल बही पर लेखा लगाने की यह दवात है, वा उसके दरबार के शिखर का कलस है, या समय की आंच में जगत् पकाने का पजावा है या वह उस भार का मुंह है जिसका संसार लावा है या होनहार की सवारी का बनाती चकडोल है, वा संसार का पानी खींचने वाला डोल है, या दिक्कुञ्जर का रङ्गीन हौदा है, या उस व्योपारी का यह भी एक बटखरा है जिसका संसार सौदा है, या भाग्यरूपी स्टाम्प की यह लाल मुहर है, वा काल की इस संसाररूपी रणभूमि की नदी का फेन है, वा काल सर्प का फल है, वा समयरूपी मतवाले हाथी की घण्टा है, वा जगत् जालसाज का मन है इसीसे सारा टण्टा है, वा लोगों की बुद्धि रूपी सरस्वती का कुण्ड है, वा काल कबन्ध का मुण्ड है, वा आकाश दर्पण में यह भूगोल का प्रतिबिम्ब है, वा चन्द्रमा का बड़ा भाई है, वा केसर के रङ्ग का फुहारा है, या भूगोल में जहाँ लाखों ग्रह पड़े हैं वहां एक यह भी छोटा मोटा लाल मण्डल है, वा पूर्व दिशा सोहागिन का सिन्धोरा है, वा शकुन का नारियल का गोला है जो रोली में बोरा है, वा लोक का दीप है, वा सर्वदा फैसन बदलने वाले काल की चद्दरदार टोपी है, या सच पूछो तो उसकी जेबी घड़ी वरञ्च धरम घड़ी है, वा नीलम की तख्ती पर एक चुन्नी जड़ी है, वा नभ का मुटुक है, वा आलोक का खान है, वा जगत् पीसने की चक्की है, वा कपट नाटक सूत्रधार का यह भी कोई गोलमटोल लाल चेहरा है, या उस खिलाड़ीकी शतरञ्जका कोई सुर्ख मुहरा है।

एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न

आज रात्रिको पर्यंक पर जाते ही अचानक आँख लग गयी। सोते में सोचता क्या हूं कि इस चलायमान शरीर का कुछ ठीक नहीं। इस संसार में नाम स्थिर रहने की कोई युक्ति निकल आवे तो अच्छा है, क्योंकि यहाँ की रीति देख मुझे पूरा विश्वास होता है कि इस चपल जीवन का क्षण भर का भरोसा नहीं। ऐसा कहा भी है—

स्वाँस स्वाँस पर हरि भजो वृथा स्वांस मति खोय।
ना जाने या स्वाँस को आवन होय न होय॥

देखो समय सागर में एक दिन सब संसार अवश्य मग्न हो जायगा। कालवस शशि सूर्य्य भी नष्ट हो जायेंगे। आकाश में तारे भी कुछ काल पीछे दृष्टि न आवेंगे। केवल कीर्त्ति-कमल संसार सरवर में रहो वा न रहो, और सब तो एक दिन तप्त तवे की बुन्द हुए बैठे हैं। इस हेतु बहुत काल तक सोच समझ प्रथम वह विचार किया कि कोई देवालय बनाकर छोड़ जाऊँ, परन्तु थोड़ी ही देर में समझ आ गया कि इन दिनों की सभ्यता के अनुसार इससे बड़ी कोई मूर्खता नहीं, और यह तो मुझे भलीभाँति मालूम है कि यही अंग्रेजी शिक्षा रही तो मन्दिर की ओर मुख फेर कर भी कोई न देखेगा। इस कारण इस विचार का परित्याग करना पड़ा। फिर पड़े पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परन्तु इस विचार में बड़े कांटे निकले। क्योंकि बनाने की देर

न होगी कि कीट 'क्रिटिक*' काट कर आधी से अधिक निगल जायँगे। यश के स्थान शुद्ध अपयश प्राप्त होगा। जब देखा कि अब टूटे फूटे विचारसे काम न चलेगा, तब लाड़िली नींद को दो रात पड़ोसियों के घर भेज आंख बन्द कर शम्भु की सी समाधि लगा गया, यहाँ तक कि इकसठ वा इक्कावन वर्ष उसी ध्यान में बीत गए। अंत को एक मित्रके बलसे अति उत्तम बात की पूँछ हाथ में पड़ गयी। स्वप्न ही में प्रभात होते ही पाठशाला बनाने का विचार दृढ़ किया। परन्तु जब थैली में हाथ डाला, तो केवल ग्यारह गाड़ी ही मुहरें निकलीं। आप जानते हैं इतने में मेरी अपूर्व पाठशाला का एक कोना भी नहीं बन सकता था। निदान अपने इष्टमित्रों की भी सहायता लेनी पड़ी। ईश्वर को कोटि धन्यवाद देता हूँ जिसने हमारी ऐसी सुनी। यदि ईंटों के ठौर मुहर चिनवा लेते तब भी तो दस पाँच रेल रुपये और खर्च पड़ते। होते होते सब हरिकृपा से बनकर ठीक हुआ। इसमें जितना समस्त व्यय हुआ वह तो मुझे स्मरण नहीं है, परन्तु इतना अपने मुन्शी से मैंने सुना था कि एक का अंक और तीन सौ सत्तासी शून्य अकेले पानी में पड़े थे। बनने को तो एक क्षण में सब बन गया था, परन्तु उसके काम जोड़ने में पूरे पैंतीस वर्ष लगे। जब हमारी अपूर्व पाठशाला बनकर ठीक हुई, उसी दिन हमने हिमालय की कन्दराओं में से खोज खोज कर अनेक

* Critic = आलोचक।

उद्दण्ड[1] पंडित बुलवाए, जिनकी संख्या पौन दशमलव से अधिक नहीं है। इस पाठशाला में अगनित अध्यापक नियत किये गये, परन्तु मुख्य केवल ये हैं। पण्डित मुग्धमणि[2] शास्त्री तर्कवाचस्पति[3] प्रथम अध्यापक। पाखंडप्रिय धर्माधिकारी-अध्यापक धर्मशास्त्र। प्राणान्तक प्रसाद वैद्यराज[4]—अध्यापक वैद्यकशास्त्र। लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण[5]—अध्यापक ज्योतिष शास्त्र। शीलदावानल नीति-दर्पण[6]—अध्यापक नीतिशास्त्र और आत्मविद्या।

इन पूर्वोक्त पंडितों के आ जाने पर अर्धरात्रि गये पाठशाला खोलने बैठे। उस समय सब इष्टमित्रों के सन्मुख उस परमेश्वर को कोटि धन्यवाद दिया, जो संसार को बनाकर क्षण भर में नष्ट कर देता है, और जिसने विद्या, शील, बलके सिवाय मान, मूर्खता, परद्रोह, परनिंदा आदि परम गुणों से इस संसार को विभूषित किया है। हम कोटि धन्यवादपूर्वक आज इस सभा के सम्मुख अपने स्वार्थरतचित्त की प्रशंसा करते हैं जिसके प्रभाव से ऐसे

---

१. अक्खड़, निडर। २. मूर्खों के सरदार। ३. बहस करने में ब्रह्मा के समान। ४. जिनसे मृत्यु प्रसन्न हो; जिनकी चिकित्सा से रोगी मर जाया करें। ५. अन्धे और ज्योतिष के नाम को आभूषण समान रखनेवाले। अन्धे ज्योतिषी। ६. शीलको दावानल की तरह जलाकर भस्म कर देनेवाले, और जैसे दर्पण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और झूठा प्रतिबिम्ब ही दीखता है उसी तरह जिनके हृदय पर नीति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता केवल उसका रूप प्रतिफलित दीखता है।

उत्तम विद्यालय की नीव पड़ी । उस ईश्वर को ही अंगीकार था कि हमारा इस पृथ्वी पर कुछ नाम रहै, नहीं तो जब द्रव्य की खोज में समुद्र में डूबते डूबते बचे थे तब कौन जानता था कि हमारी कपोल-कल्पना सत्य हो जायगी। परन्तु ईश्वर की अनुग्रह से हमारे सब संकट दूर हुए और अन्त समय हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई । हम अपने इष्टमित्रों की सहायता को कभी न भूलेंगे कि जिनकी कृपा से इतना द्रव्य हाथ आया कि पाठशाला का सब खर्च चल गया, और दस पाँच पीढ़ी तक हमारी संतान के लिए बच रहा। हमारे पुत्र परिवार के लोग चैनसे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। हे सज्जनो, यह तुम्हारी कृपा का विस्तार है कि तन, मनसे आप इस धर्मकार्य्य में प्रवृत्त हुए, नहीं मैं दो हाथ पैर वाला बेचारा मनुष्य आपके आगे कौन कीड़ा था जो ऐसे दुष्कर कर्म को कर लेता, यहाँ तो घरकी केवल मूंछे ही मूंछे थीं। कुछ मेह कुछ गंगाजल, काम आपकी कृपा से भली भाँति हो गया। मैं आजके दिन को नित्यता का प्रथम दिन मानता हूं, जो औरों को अनेक साधन से भी मिलना दुर्लभ है। धन्य है उस परमात्मा को जिसने आज हमारे यश के डहडहे अंकुर फिर हरे किये । हे सुजन शुभचिन्तको ! संसार में पाठशाला अनेक हुई होंगी परन्तु हरिकृपा से जो आप लोगों की सकलपूर्ण कामधेनु यह पाठशाला है वैसी अचरज नहीं कि आपने इस जन्म में न देखी सुनी हो। होनहार बलवान है, नहीं कलिकाल में ऐसी पाठशाला का बनाना कठिन था। देखिये यह हम लोगों के भाग्य का उदय

है कि ये महामुनि मुग्धमणि शास्त्री बिना प्रयास हाथ लग गये, जिनको सतयुग के आदि में इन्द्र अपनी पाठशाला के निमित्त समुद्र और बन जंगलों में खोजता फिरा; अन्त को हार मान बृहस्पति को रखना पड़ा। हम फिर भी कहते हैं कि यह हमारे भाग्य ही की महिमा थी कि वे ही पण्डितराज मृगयाशील श्वान के मुख में शशा के धोखे बद्रिकाश्रम की एक कंदरा में से पड़ गये। इनकी बुद्धि और विद्या की प्रशंसा करते दिन में सरस्वती भी लजाती है। इसमें सन्देह नहीं कि इनके थोड़े ही परिश्रम में पंडित मूर्ख और अबोध पंडित हो जायँगे। हे मित्र! मेरे निकट जो महाशय बैठे हैं इनका नाम पंडित पाखंडप्रिय है। किसी समय इस देश में इनकी बड़ी मानता थी। सब स्त्री पुरुषों को इन्होंने मोह रक्खा था। परन्तु अब कालचक्र के मारे अंगरेजी पढ़े हिन्दुस्तानियों ने इनकी बड़ी दुर्दशा की। इस कारण प्राण बचाकर हिमालय की तराई में हरित दूर्वापर सन्तोष कर अपना कालक्षेप करते थे। विपत्ति ईश्वर किसी पर न डाले। जब तक इनका राज था दृष्टि बचाकर भोग लगाया करते थे। कहां अब श्वान शृगाल के सङ्ग दिन काटने पड़े। परन्तु फिर भी इनकी बुद्धि पर पूरा विश्वास है कि एक कार्तिक मास भी इनको लोग थिर रह जाने देंगे तो हरिकृपा से समस्त नवीन धर्मों पर चार पाँच दिन में पानी फेर देंगे।

इनसे भिन्न, पंडित प्राणांतकप्रसाद भी प्रशंसनीय पुरुष हैं। जब तक इस घट में प्राण है तब तक न किसी पर इनकी

प्रशंसा बन पड़ी न बन पड़ैगी । ये महावैद्य के नाम से इस समस्त संसार में विख्यात हैं । चिकित्सा में ऐसे कुशल हैं कि चिता पर चढ़ते चढ़ते रोगी इनके उपकार का गुण नहीं भूलता। कितना ही रोग से पीड़ित क्यों न हो, क्षणभर में स्वर्ग के सुख को प्राप्त होता है। जब तक ओषधी नहीं देते केवल उसी समय तक प्राणी के संसारी विथा लगी रहती है। आप लोग कुछ काल की अपेक्षा कीजिये इनकी चिकित्सा और चतुराई अपने आप प्रकट हो जायगी । यद्यपि आपके अमूल्य समय में बाधा हुई, परन्तु यह भी स्वदेश की भलाई का काम था, इस हेतु आप आतुर न हूजिये और शेष अध्यापकों की अमृतमय जीवन कहानी श्रवण कीजिये ।

ये लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण बड़े उद्दंड पण्डित हैं । ज्योतिष विद्या में अति कुशल हैं । कुछ नवीन तारे भी गगन में जाकर ये ढूंढ़ आये हैं, और कितने ही नवीन ग्रन्थों की भी रचना कर डाली है । उनमें से "तामिस्रमकरालय"[1] प्रसिद्ध और प्रशंसनीय है। यद्यपि इनको विशेष दृष्टि नहीं आता, परन्तु तारे इनकी आँखों में भली भांति बैठ गये हैं।

रहे पण्डित शीलदावानल-नीतिदर्पण। इनके गुण अपार हैं। समय थोड़ा है, इस हेतु थोड़ा सा आप लोगों के आगे इनका वर्णन किया जाता है। ये महाशय बालब्रह्मचारी हैं। अपनी आयु भर नीतिशास्त्र पढ़ते पढ़ाते रहे हैं । इनसे नीति तो बहुत से

१ अन्धकार के मगरों से भरा समुद्र ।

महात्माओं ने पढ़ी थी परन्तु वेणु, बाणासुर, रावण, दुर्योधन, शिशुपाल, कंस आदि अनेक मुख्य शिष्य थे । और अब भी कोई कठिन काम आकर पड़ता है तो अंगरेजी न्यायकर्त्ता भी इनकी अनुमति लेकर आगे बढ़ते हैं । हम अपने भाग्य की कहाँ तक सराहना करें ! ऐसा तो संयोग इस संसार में परम दुर्ल्लभ है । अब आप सब सज्जनों से यही प्रार्थना है कि आप अपने अपने लड़कों को भेजें और व्यय आदि की कुछ चिन्ता न करें, क्योंकि प्रथम तो हम किसी अध्यापक को मासिक देंगे नहीं, और दिया भी तो अभी दस पाँच वर्ष पीछे देखा जायगा । यदि हमको भोजन की श्रद्धा हुई तो भोजन का बंधान बांध देंगे, नहीं यह नियत कर देंगे कि जो पाठशाला सम्बन्धी द्रव्य हो उसका वे सब मिलकर नाम लिया करें । अब रहे केवल पाठशाला के नियत किये हुए नियम सो आपको जल्दी सुनाये देता हूँ । शेष स्त्री शिक्षाका जो विचार था, वह आज रातको हम घर पूछ लें तब कहेंगे ।

नियमावली

(१) नाम इस पाठशाला का "गगनागत अविद्यावरुणालय"[1] होगा ।

(२) इसमें केवल बंध्या और विधवाके पुत्र पढ़ने आवेंगे ।

(३) डेढ़ दिनसे अधिक और पौने अट्ठानबेसे कमती आयुके विद्यार्थी भीतर न आने पावेंगे ।

१—आकाश मे स्थित अविद्या का समुद्र ।

(४) सेर भर सुंघनी अर्थात् हुलाससे तीन सेर तक कक्षानुसार फीस देना पड़ेगा।

(५) दो मिनट बारह बजे रातसे पूरे पाँच बजे तक पाठशाला होगी।

(६) प्रत्येक उजाली अमावास्याको भरती हुआ करेगी।

(७) कृष्ण पक्ष में युवा स्त्री और शुक्ल पक्षमें बालक शिक्षा पावेंगे।

(८) परीक्षा प्रतिमास होगी, परन्तु द्वितीया द्वादशीकी सन्धिमें हुआ करेगी।

(९) वार्षिक परीक्षा ग्रीष्म ऋतु, माघ मासमें होगी। उसमें जो पूरे उतरेंगे वे उच्च पदके भागी होंगे और पदोंके भिन्न पारितोषिकमें स्त्रियोंको कामकी वस्तु और बालकोंको खेलके खिलौने मिलेंगे।

(१०) इस पाठशालामें प्रथम पाँच कक्षा होंगी। दो स्त्रियों की और तीन पुरुषोंकी। और प्रत्येक ऋतुके अंतमें परीक्षा लेकर नीचेवाले ऊपरकी कक्षामें भर दिये जायँगे।

(११) प्रतिपदा और अष्टमी भिन्न, एक अमावस्याको स्कूल और खुलैगा, शेष सब दिन बन्द रहेगा।

(१२) किसीको कामके लिये छुट्टी न मिलेगी, और परोक्ष होनेमें पांच मिनटमें दो बार नाम कटेगा।

---

१ भारतेन्दुजी यहाँ चूक गये। आस्ट्रेलियामें माघमें हाँ कड़ी गरमी पड़ती है।

(१३) कुछ भी अपराध करने पर चाहे कितना ही तुच्छ हो "इण्डियन पिनलकोड" अर्थात् ताजीराज हिन्दके अनुसार दण्ड दिया जायगा।

(१४) मुहर्रममें एक साल पाठशाला बन्द रहेगी।

(१५) मलमासमें अनध्यायके कारण नृत्य और संगीतकी शिक्षा दी जायगी।

(१६) छल, निन्दा, द्रोह, मोह आदि भवसागरके चतुर्दश-कोटि रत्न घोल कर पिलाये जाया करेंगे।

(१७) इसका प्रबन्ध धूर्तवंशावतंस नाम जगत विदित महाशय करेंगे।

(१८) नीचे लिखी हुई पुस्तकें पढ़ायी जायेंगी।

व्याकरण—मुग्धमंजरी, शब्दसंहार, अज्ञानचंद्रिका।
धर्मशास्त्र—वंचकवृत्तिरत्नाकर[1], पाखंडविडंबन, अधर्मसेतु।
वैद्यक—मृत्युचिन्तामणि[2], मनुष्यधनहरण, कालकुठार[3]।
ज्योतिष—मुहूर्त्तमिथ्यावली, मूर्खाभरण, गणितगर्वांकुर।
नीतिशास्त्र—नष्टनीतिदीप, अनीतिशतक, धूर्त्तपंचाशिका। इन दिनोंकी सभ्यताके मूल ग्रन्थ—असत्यसंहिता, दुष्टचरितामृत, भ्रष्टभास्कर।

१—ठगीके पेशेके रत्नोंकी खान।

२—मृत्युकी चिन्ता उत्पन्न करनेके सर्वोत्तम उपायोंका ग्रन्थ।

३—कालकी कुल्हाड़ी, अर्थात् वह कुल्हाड़ी जिससे मृत्यु औरोंको मारती है, वह नहीं जो मृत्यु पर चलायी जाय।

कोश—कुशब्दकल्पतरु, शून्यसागर।

नवीन नाटक—स्वार्थ संग्रह, कृतघ्नकुलमंडन।

अब जिस किसीको हमारी पाठशालामें पढ़ना अंगीकार हो, यह समाचार सुननेके प्रथम, तारमें खबर दे। नाम उसका किताबमें लिख लेंगे, पढ़नेको आओ चाहे मत आओ।

नाटकों का इतिहास

यदि कोई हमसे यह प्रश्न करे कि सबसे पहले किस देश में नाटकों का प्रचार हुआ तो हम क्षण मात्र का भी बिलम्ब किये बिना मुक्त कंठ से कह देंगे भारतवर्ष में। इस का प्रमाण यह है कि जिस देश में संगीत और साहित्य प्रथम परिपक्व हुए होंगे वहीं प्रथम नाटक का भी प्रचार हुआ होगा। हम नहीं समझ सकते कि पृथ्वी की और कोई जाति भी भारतवर्ष के सामने इस विषय में मुंह खोले। आर्यों का परम शास्त्र वेद संगीत और साहित्यमय है। और जाति में संगीत और साहित्य प्रमोद के हेतु होते हैं किन्तु हमारे पूज्य आर्य महर्षियों ने इन्हीं शास्त्रों द्वारा आनन्द में निमग्न हो कर परमेश्वर की उपासना की है। यहां तक कि हमारे तीसरे वेद साम की संज्ञा ही गान है। और किस के यहां धर्म संगीत-साहित्य-मय है? हमारे यहां लिखा है—

वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं प्रयच्छति ॥ १ ॥
काव्यालापाश्च येकेचिन् गीतिकान्यखिलानिच ।
शब्दरूपधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः ॥ २ ॥

तो जब हमारे धर्म के मूल ही में संगीत और साहित्य मिले हैं तब इस में क्या सन्देह है कि इस रस के प्रथमाधिकारी आर्यगण ही हैं । इस के अतिरिक्त नाटकरचना में रंग नट इत्यादि जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे सब प्राचीन काव्य, कोष, व्याकरण और धर्मशास्त्रों में पाए जाते हैं । इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि नाटकरचना हमारे आर्यगणों पर पूर्व काल ही से विदित है ।

सर्वदा नट लोगों के ही द्वारा ये नाटक नहीं अभिनीत होते थे । आर्य राजकुमार और कुमारीगण भी इस को सीखते थे । महाभारत के खिल हरिवंश पर्व के विष्णु पर्व के ९२ अध्याय में प्रद्युम्न सम्बादिक यादव राजकुमारों का वज्रनाभ के पुर में जाना और वहां नट बन कर (कौबेरम्भाभिसार) नाटक खेलना बहुत स्पष्ट रूप से वर्णित है । वहाँ लिखा है कि जब प्रद्युम्न आदिक वीर वज्रनाभ के पुर में गये तो भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कुमारों को नाटक करने की आज्ञा दे कर भेजा था । प्रद्युम्न सूत्रधार थे साम्ब विदूषक थे और गद पारिपार्श्विक थे । यहां तक कि स्त्रियां भी गाने बजाने का साज ले कर साथ गई थीं । पहले दिन इन लोगों ने रामजन्म नाटक किया जिस में

लोमपाद राजा की आज्ञा से गणिका लोगों का शृङ्गी ऋषि को ठग कर लाना बहुत अच्छी रीति से दिखलाया गया था। दूसरे दिन फिर रम्भाभिसार नाटक किया (१) इस में पहिले इन लोगों ने नेपथ्य बांधा (२) फिर स्त्रियों ने भीतर से बड़े सुन्दर स्वर से गान किया (३) पीछे गंगा जी के वर्णन में प्रद्युम्न गद और साम्ब ने मिल कर नान्दी गायी (४) और तदन्तर प्रद्युम्न जी ने विनय के श्लोक पढ़ कर सभा को प्रसन्न किया (५) और तब नाटक आरम्भ हुआ। इस में शूर नामक यादव रावण बना, मनोवती नाम्नी स्त्री रम्भा (६) प्रद्युम्न नल कूबर और साम्ब विदूषक। इसी प्रकरण से यह बात सिद्ध होती है कि केवल नट ही नहीं, प्राचीन काल से आर्यकुल

(१) 'भैमापि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा।
कार्यार्थं भीम कर्माणो नृत्यार्थं मुपचक्रमुः॥
इत्यादि २१ श्लोक से ३२ तक।

(२) अर्थात् बिना नेपथ्य के महाराष्ट्रों की भांति शतरंजी और मशालची के भरोसे नाटक नहीं खेला।

(३) इस से विदित हुआ कि वाह्यपटी उठने के पहले गान होना भी प्राचीन रीति है।

(४) नांदी विषयक दृढ़ नियम उसी काल से प्रचलित है।

(५) विनय के श्लोक पढ़े अर्थात् प्रस्तावना हुई।

(६) इस से एक बात यह बहुत बड़ी प्रमाण हुई कि प्राचीन काल में स्त्री का वेष स्त्री लेती थी।

में बड़े २ लोग भी इस विद्या को भली भांति जानते थे (१)।

---

(१) अब के लोगों को नाटक के अनुशीलन वा अनुकरण करने में उत्साह नहीं होता वरन इस को तुच्छ और बुरा समझ के इस से दूर भागते हैं और नाटक करने वाले चतुरों को लोग साधारण ढोल बजाने वाले नट जान कर इस काम में अपनी घृणा प्रकाश करते हैं, परन्तु बड़े शोच की बात है कि जो सब से अच्छी वस्तु है और जिस के करने वाले लोग महा सभ्यता के निकेतन हैं इन्हीं दोनों बातों में देश के कुसंस्कार से लोगों को अरुचि हो गई । नाटकों का अभिनय करना सहृदय जनों के समाज को कितनी प्रीति देनेवाला, देश की कुचालों को सुधारनेवाला और कैसा कुशल करने वाला है इस का सब गुण उन नाटकों को देखने ही से उन पर प्रगट हो जायगा और इसी भांति प्रतिकूलता के बन्धन से छूट कर अनुकूलता भूषण से भूषित होकर नाटक दर्शन रूपी अलौकिक कुसुम कानन में घूमने फिरने से अनिर्वचनीय आनन्द पावैंगे और उस के काव्यों के वायु के ठंढे और सुगन्धित झकोरों से उन के जी की कली खिल जायगी। नाटकों के अभिनय करने में जो स्वच्छन्दता होती है उसे छोड़ कर उससे देश का कितना उपकार होता है कि हम लिख नहीं सकते। देखिये कि यदि एक बड़ा राजा वा कोई धनी अथवा कोई पण्डित किसी बुरे काम में प्रवृत्त होय तो उस को हम लोग सभा में कभी शिक्षा न दे सकेंगे और जो कुसंस्कार की दावाग्नि बहुत काल से प्रगट हो कर हम लोगों के मंगलमय सभ्यता बन को जला रही है उस महा दावाग्नि को हम लोग दोष कथन वारि से घर बैठे बुझाना चाहेंगे तो कभी न बुझैगी।

कंकर-स्तोत्र

कङ्कर देव को प्रणाम है । देव नहीं महादेव क्योंकि काशी के कङ्कर शिव शङ्कर समान हैं । हे कङ्कर समूह ! आज कल आप नई सड़क से दुर्गा जी तक बराबर छाये हो इससे काशी खण्ड "तिले तिले" सच हो गया। अतएव तुम्हें प्रणाम है। हे लीलाकारिन ! आप केशी शकट वृषभ खरादि के नाशक हो इस से मानो पूर्वार्द्ध की कथा हो अतएव व्यासों की जीविका हो।

आप सिर समूह भञ्जन हो क्योंकि कीचड़ में लोग आप पर मुंह के बल गिरते हैं।

आप पिष्ट पशु की व्यवस्था हो क्योंकि लोग आपकी कढ़ी बना कर आपको चूसते हैं।

आप पृथ्वी के अन्तरगर्भ से उत्पन्न हो । संसार के गृह निर्माण मात्र के कारणभूत हो । जल कर भी सफेद होते हो दुष्टों के तिलक हो । ऐसे अनेक कारण हैं जिनसे आप नमस्कारणीय हो।

हे प्रबल वेग अवरोधक ! गरुड़ की गति भी आप रोक सकते हो और की कौन कहै इस से आपको प्रणाम है।

हे सुन्दरी सिङ्गार ! आप बड़ों के बड़े हो क्योंकि चूना पान की लाली का कारण है और पान रमणी गण के मुख शोभा का हेतु ह इस स आपको प्रणाम है।

हे चुङ्गीनन्दन ! ऐन सावन में आपको हरियाली सूझी है

क्योंकि दुर्गा जी पर इसी महीने में भीड़ विशेष होती है तो हे हठ मूर्ते ! तुमको दण्डवत है।

हे प्रबुद्ध ! आप शुद्ध हिन्दू हो क्योंकि शरह बिरुद्ध हो आब आया और आप न बर्खास्त हुए इस से आपको सलाम है।

हे स्वेच्छारिन् ! इधर उधर जहां आपने चाहा अपने को फैलाया है। कहीं पटरी के पास पड़े हो कहीं बीच में अड़े हो अतएव हे स्वतंत्र आपको नमस्कार है।

हे ऊखड़ खाभड़ शब्द सार्थकर्त्ता ! आप कोण मिति के नाशकारी हो क्योंकि आप अनेक विचित्र कोण सम्बलित हो। अतएव हे ज्योतिषारि आपको नमस्कार है।

हे शस्त्र समष्टि ! आप गोली गोला के चचा, छर्रों के परदादा, तीर के फल, तलवार की धार और गदा के गोला हो। इस से आपको प्रणाम है।

आहा ! जब पानी बरसता है तब सड़क रूपी नदी में आप द्वीप से दर्शन देते हो इस से आपके नमस्कार में सब भूमि को नमस्कार हो जाता है।

आप अनेकों के वृद्धतर प्रपितामह हो क्योंकि ब्रह्मा का नाम पितामह है उनका पिता पङ्कज है उसका पिता पङ्क है और आप उसके भी जनक हो इससे आप पूजनीयों में एल० एल० डी० हो।

हे जोगा जिवलाल रामलालादि मिस्त्री समूह जीविका दायक ! आप कामिनी भत्तक धुरी विनाशक बारनिश चूर्णक हो। केवल गाड़ी ही नहीं घोड़े की नाल सुम बैल के खुर और

कंटक चूर्ण को भी आप चूर्ण करने वाले हो इस से आपको नमस्कार है।

आप में सब जातियों और आश्रमों का निवास है। आप बाणप्रस्थ हो क्योंकि जङ्गलों में लुड़कते हो। ब्रह्मचारी हो क्योंकि बटु हो। गृहस्थ हो चूना रूप से सन्यासी हो क्योंकि घुट्टमघुट्ट हो। ब्राह्मण हो क्योंकि प्रथम वर्ण हो कर भी गली गली मारे २ फिरते हो। क्षत्री हो क्योंकि खत्रियों की एक जाति हो। वैश्य हो क्योंकि कांट बांट दोनों तुम में है। शूद्र हो क्योंकि चरण सेवा करते हो। कायस्थ हो क्योंकि एक तो ककार का मेल दूसरे कचहरी पथावरोधक तीसरे क्षत्रियत्व हम आपको सिद्ध करही चुके हैं। इससे हे सर्व वर्ण स्वरूप तुम को नमस्कार है।

आप ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य्य, अग्नि, जम, काल, दक्ष और वायु के कर्त्ता हो, मन्मथ की ध्वजा हो, राजा पद दायक हो, तन मन धन के कारण हो, प्रकाश के मूल शब्द की जड़ और जल के जनक हो बरञ्च भोजन के भी स्वादु कारण हो, क्योंकि आदि व्यंजन के भी बाबाजान हो इसी से हे कंकड़ तुमको प्रणाम है।

आप अङ्गरेजी राज्य में श्रीमती महारानी विक्टोरिया और पार्लमेण्ट महासभा के आछत, प्रबल प्रताप श्रीयुत गवर्नर जनरल और लेफ्टेण्ट गवर्नर के वर्तमान होते, साहिब कमिश्नर साहिब मैजिस्ट्रेट साहिब सुपरइनटेण्डेण्ट के इसी नगर में रहते और साढ़े तीन तीन हाथ के पुलिस इन्सपेक्टरों और कांस्टिबलों के जीते भी गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छन्द रूप

से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पांव पड़ कर रुधिर धारा से नियम और शान्ति का अस्तित्व बहा देते हो अतएव हे अङ्गरेजी राज्य में नवाबी स्थापक ! तुम को नमस्कार है ।

यह लम्बा चौड़ा स्तोत्र पढ़ कर हम बिनती करते हैं कि अब आप सद्देसिकन्दरी बाना छोड़ो या हटो या पिटो ।

ईश्वर बड़ा विलक्षण है !

यह उसी का विलक्षणपन है कि जिस भूमि में उदयन, शूद्रक विक्रम भोज ऐसे राजा कालिदास बाण से पण्डित दे उसी भूमि में हमारे तुमारे से लोग हैं, यह उसी का विलक्षणपन है कि मुसलमानों ने हिन्दुस्तान को बहुत दिन तक भोगा अब अङ्गरेज भोगते हैं, मुसलमानों को अपने पक्षपात है अङ्गरेजों को अपनी का, हिन्दू दोनों की समझ में मूर्ख हैं इसीसे ।—

यह उसी का विलक्षणपन है कि हिन्दू निर्लज्ज हो गए हैं, ऐसे समय में जब कि सब आगे बढ़ा चाहते हैं ये चूकते हैं और पीछे ही रहे जाते हैं, विशेष करके सब संसार का आलस्य पश्चिमोत्तर देश वासियों में घुसा है और अपने को भूल रहे हैं क्षुद्रपना नहीं छूटता इसी से ।—

यह उसी का विलक्षणपना है कि हम लोग समाचार पत्र लिखते हैं और यह अभिमान करते हैं कि हमारे इन लेखों से हमारे भाइयों का कुछ उपकार हो, भला नक्कारखाने में तूती की

आवाज़ कौन सुनता है, सब अपने रङ्ग में उसकी माया से मस्त उनको क्यों नहीं छोड़ते हैं क्यों नहीं विराग करते, संसार मिटै मको क्या हम कौन जो कहैं, पर यह नहीं समझते, हम अपने । अभिमान में चूर हैं यह भी सब उसी की माया है इसी से हम कहते हैं ईश्वर बड़ा विलक्षण है।

जीते हैं जानते हैं कि संसार का पट्टा मैंने लिखवा लिया है पहिले तो मैं मरूंहींगा नहीं और जो मरा भी तो सब मेरे साथ जायगा इसी से।—

सच है मनुष्य यह कैसे सोचै, जो हम बैठे हैं, खाते पीते हैं चैन करते हैं कभी सोचते नहीं कि हमारी दशान्तर भी होगी वही हम कैसे मरैंगे कदापि नहीं आता, इसी से—

मजा है तमाशा है, खेल है, धूम है, दिल्लगी है,

मसखरापन है, लुच्चापन है, हंसी है मूर्खता है, खिलौने हैं, बालक हैं पट्ठे हैं, नासमझ हैं, जड़ हैं, जीव हैं, मोहित हैं, उल्लू के पट्ठे हैं, सब परन्तु उसके समझ में और उसके लोगों के समझ में भेद है इसी से।—

उसके नाते परस्पर सब केवल सगे भाई बहन हैं पर लोग जाति कुजातिवर्ण, आश्रम, नीच ऊँच राजा प्रजा स्त्री पुत्र इत्यादि अनेक भेद समझते हैं इसी से।—

यह उसी की विलक्षणपना है कि हिन्दुओं को सब के पहिले उसने लक्ष्मी और सरस्वती दी और चिरकाल तक उनको इस

देश में स्थिर किया परंतु अब वही हिन्दू दास और अर्धशिक्षित हो रहे हैं इसी से।—

अनेक प्रकार के जीव, विचित्र स्वभाव, अलग अलग धर्म और रुचि, विचित्र २ रंग काम क्रोध, मद, ईर्षा, अभिमान दम्भ, पैशुन्य, आनृत्य इत्यादि अनेक प्रकार के स्वभाव बनाकर लम्बा चौड़ा गोरखधन्धा का जाल फैला कर इस घनचक्कर में सबको घुमा दिया है इसी से।—

एक बिचारा सुख से अपना कालक्षेप करता है कुछ उसके काम में विघ्न डालकर व्यर्थ बिना बात बैठे बिठाये उसको रुला दिया, कोई दुःख में है उसको एक संग सुख दे दिया इसी से। —

एक को घटाया एक को बढ़ाया एक को बनाया एक को बिगाड़ा, राई को पर्वत किया पर्व्वत को राई राजा को रंक किया रंक को राजा, भरी ढलकाया खाली भरा इसी से।—

उदार और पण्डित दरिद्र मूर्ख धनवान, सुन्दर और रसिक को कुरूपा कूढ़ स्त्री, कुरसिक को सुंदर वा रसिक स्त्री, सुस्वामी को कुसेवक, सुसेवक को कुस्वामी इत्यादि संसार में कई बातें बेजोड़ हैं इसी से।—

प्रत्यक्ष लोग देखते हैं कि हमारे बाप दादा इत्यादि मर गए और नित्य लोग मरते जाते हैं तब भी जो लोग—

भला इस संसार बनाने का क्या काम था? व्यर्थ इतने उल्लू एक सङ्ग पिञ्जरे में बन्द कर दिये किसी को दुःखी बनाया किसी

को सुखी, किसी को राजा बनाया किसी को फकीर, इसी से मैं कहता हूँ कि ईश्वर बड़ा विलक्षण है।

सब उसमें लय रहता, किसी को कुछ दुःख-सुख का अनुभव न होता वह केवल परम आनन्दमय अपने रमता इसी।—

कोई इसको हाँ कहता है कोई नहीं कोई मिला कोई अलग, कोई एक कोई अनेक तो उसके अपने माहात्म्य की दुर्दशा क्यों करानी थी इसी।—

सर्व्व सामर्थ्यमान उसको सुनकर भी लोग सर्वदा उसको नहीं मानते पर हां जब कुछ दुःख पड़ता है तब स्मर्ण करते हैं जब लोगों का कुछ बनता है तो उसको धन्यवाद तो थोड़े लोग देते हैं पर जो कुछ काम बिगड़ता है तो गाली सभी देते हैं, पानी न बरसै तो, घर का कोई मर जाय तो, रोग फैले तो हार जाय तो सब प्रकार से वह गाली सुनता है इसी से।

—:○:—